सरस्वती-सिरीज़ नं० ३०

प्राचीन तिब्बत

रामकृष्ण सिनहा,
बी० ए०, 'विशारद'

प्रकाशक
इंडियन प्रेस लिमिटेड
प्रयाग

Printed and published by K. Mittra, at The Indian Press, Ltd., Allahabad.

पहला अध्याय

तिब्बत के लामा

"अच्छा तो ठीक है। आप दावसन्दूप से दुभाषिये का काम लीजिए। गङ्गटोक तक वह बराबर आपके साथ रहेगा।"

मुझसे बात करनेवाले महोदय का सम्बन्ध इसी संसार से है या नहीं, इसमें मुझे सन्देह है। नारङ्गी रङ्ग के कमख़ाब का उनका लिबास था और सिरोपा में हीरे का एक बड़ा सितारा लक-लक कर रहा था। वे ऐसे लगते थे मानों कोई नाटे क़द का यक्षकुमार समीपवर्ती हिमालय की चोटियों से अभी-अभी उतरा हो।

लोग उन्हें 'अवतारी लामा' कहते थे और यह भी कहते थे कि तराई के किसी छोटे राज्य के वे उत्तराधिकारी हैं। किन्तु मुझे विश्वास नहीं होता था। भला इन्द्रधनुष की रङ्ग-बिरङ्गी छटा दिखलानेवाली उनकी और उनके साथियों की यह माया मेरे नेत्रों के सामने और कब तक बनी रहेगी! मैं पिछले १५ दिनों से बराबर इसी इन्द्रजाल को सुलझाने में लगी थी।

एकाएक नक़्क़ारे पर चोट पड़ने से जैसे मैं चौंक उठी। शहनाई के धीमे स्वर के खुलने के साथ ही वे यक्षकुमार और उनके साथी अपने-अपने घोड़ों पर सवार हो गये।

"मैं आपकी राह देखूँगा"—मेरी ओर कृपापूर्ण दृष्टि से देखते हुए लामा ने कहा।

मुझे ऐसा लगा जैसे मैंने कुछ कहा हो। दूसरे ही दिन उनकी राजधानी के लिए चल देने का शायद मैंने वचन दिया था। सहसा बाजे-गाजे के साथ यह छोटा सा जुलूस आँखों से ओझल हो गया और मैं खोई हुई सी खड़ी रह गई।

धीरे-धीरे दूर जाकर बाजों की ध्वनि विलीन हो गई और मैं जाग सी पड़ी।

अरे, यह सब तो सत्य था। मैं जीती-जागती हिमालय की तराई में कलिम्पोंग तक पहुँच गई हूँ। और फिर अगर यह केवल सपना होता तो मुझे सौंपा हुआ यह लाचवा मेरे पास कहाँ से खड़ा रहता?

कुछ राजनैतिक उलट-फेर से विवश होकर दलाई लामा इधर इन दिनों ब्रिटिश-राज्य में आश्रय ग्रहण कर रहे थे। यह मेरा परम सौभाग्य था कि ऐसा दैव-संयोग मेरे हाथ लगा। मैंने इस सुअवसर का पूरा-पूरा लाभ उठाने का निश्चय कर लिया।

कलिम्पोंग में दलाई लामा भूटान के राज-मन्त्री के अतिथि थे। इमारत वैसे भी काफ़ी आलीशान थी। उसे और रौनक़ देने के लिए बड़े लम्बे-लम्बे बाँसों की दो-दो क़तारें मेहराब के आकार की लगा दी गई थीं। हर एक बाँस से झण्डा फहरा रहा था और हर एक झण्डे पर 'ओं मणि पद्मे हुं' लिखा हुआ था।

निर्वासित नृपति अपने सैकड़ों आदमियों के साथ यहाँ भी ठाठ ही से रहते थे, किन्तु राजप्रासाद का वह वैभव यहाँ कहाँ से आता? सड़क पर जाता हुआ कोई राही बाँसों के इस झुरमुट को देखने के लिए कुछ काल ठिठक भले जाय, किन्तु इससे उसे पोतला के वास्तविक ऐश्वर्य और चहल-पहल का रत्ती भर भी अनुमान होना असम्भव था।

ल्हासा की पवित्र पुरी में बहुत कम लोगों की पहुँच भिक्षु-सम्राट् तक हो सकी है। अपने इस निर्वासन-काल में भी वे

किसी से मिलते-जुलते नहीं थे। इसके पूर्व मेरे सिवा तिब्बत देश के बाहर की और किसी स्त्री-जाति का उनके दरबार तक पहुँचने की नौबत नहीं आई थी। और मैं दावे के साथ कह सकती हूँ कि आज तक इस नियम का अपवाद केवल मेरे बारे में हुआ है।

बौद्ध धर्म के सिद्धान्तों की जानकारी रखनेवाली कोई पाश्चात्य स्त्री दलाई लामा की समझ में एक अनोखी बात थी। अगर उनसे बातें करते-करते मेरे नीचे की धरती फट जाती और मैं उसमें समा जाती, तो उन्हें इतना अचम्भा न होता। उन्हें विश्वास ही नहीं होता था। आख़िर जब वे राह पर आये तो बड़ी नम्रता से मेरे गुरु का नाम पूछा। उन्हें विश्वास था कि मैं किसी एशियाई गुरु का नाम लूँगी। उन्होंने सोचा होगा कि महात्मा बुद्ध के बारे में मेरी जानकारी एशिया में आकर हुई होगी। मेरे पैदा होने के कहीं पहले प्रसिद्ध बौद्ध ग्रन्थ 'ग्यछेर् रोल्पा' का तिब्बती से फ़्रेञ्च भाषा में अनुवाद हो चुका था। पर उन्हें इस बात का विश्वास दिलाना मेरे लिए आसान नहीं था। "ख़ैर", अन्त में उन्होंने कहा "अगर तुम्हारी यह बात मान भी ली जाय कि कुछ बाहरी लोग हमारी भाषा जान गये हैं और हमारी धर्म-पुस्तकें उन्होंने देखी हैं तो यह कौन जानता है कि उनका असली मतलब उनकी समझ में आ ही गया है!"

मैंने देखा, मौक़ा अच्छा है; चूकना नहीं चाहिए। तुरन्त कहा-"जी, यही तो बात है। मेरा भी अनुमान है कि तिब्बती धर्म की कुछ विशेष बातों का हमने बिल्कुल ग़लत अर्थ समझा है। इन्हीं को ठीक-ठीक समझने के सिलसिले में तो मैंने आपको भी कष्ट दिया है।"

मेरे इस उत्तर से दलाई लामा ख़ुश हो गये। मैंने उनसे जो-जो सवाल किये सभी का उत्तर उन्होंने प्रसन्नता-पूर्वक दिया और मेरे लिए और भी सुभीते कर दिये।

हाँ तो, यह तो मैं बता ही चुकी हूँ कि किस प्रकार से सिक्कम के उत्तराधिकारी कुँवर से मेरी भेट हुई और कैसे मैंने उनकी राजधानी तक जाने का वचन भी दे दिया था। पर गङ्गटोक के लिए चल देने के पूर्व यहाँ जो एक खास बात देखने में आई उसका उल्लेख भी करती चलूँ।

तीर्थ-यात्रा करने के लिए निकले हुए लोग झुण्ड के झुण्ड दलाई लामा के हाथ से आशीर्वाद पाने के लिए इकट्ठे हुए थे। रोम में भी लोग पोप से इस प्रकार का आशीर्वाद पाते हैं किन्तु यहाँ के और वहाँ के ढंग में अन्तर था। पोप बस एक बार हाथ उठाकर एक साथ सबको आशीर्वाद दे देता है, किन्तु दलाई लामा को प्रत्येक व्यक्ति को अपने हाथ से अलग-अलग स्पर्श करना होता है। और इस कार्य्य में उन्हें प्रत्येक के ओहदे का विचार रखना पड़ता है। जिसका दर्जा सबसे बड़ा होता है, उसके मस्तक पर वे अपने दोनों हाथ रखते हैं। औरों के सिर पर वे केवल एक हाथ से या दो उंगलियों से—कभी-कभी एक से—भी छू भर देते हैं। जो सबसे निम्न श्रेणी के होते हैं उन्हें दलाई लामा के हाथ से अपने सर पर काते* के एक हलके स्पर्श से ही सन्तोष करना होता है।

लोगों की संख्या सैकड़ों में थी। इस भीड़ में बहुत से बङ्गाली और नैपाली हिन्दू भी आ मिले थे। बड़ी देर तक यह जन-समूह दलाई लामा के सामने से निकलता रहा।

एकाएक मेरी दृष्टि एक ओर कुछ अलग भूमि पर बैठे एक ऐसे आदमी पर पड़ी, जो हिन्दू साधुओं की भाँति जटा रखाये हुए था पर भारतीय नहीं लगता था। उसकी बग़ल में एक झोली थी। रह रहकर वह भीड़ को देखता और अजीब ढङ्ग से मुस्करा देता था।

---

* काते हुए सूत का बना रङ्ग-बिरङ्गा फ़ीता, जिसे धार्मिक लामा प्रायः एक दूसरे को भेट में देते हैं।

दावसन्दूप से ज्ञात हुआ कि वह एक रमता योगी (नालजोर्पा) है और कुछ दिनों से पास के एक मठ में ठहरा हुआ है।

जिस ढङ्ग से वह दलाई लामा और भीड़ के सीधे-सादे लोगों पर हँस रहा था उससे मुझे बड़ा कौतूहल हुआ। मैंने सोचा, इससे मिलना चाहिए और नहीं तो कुछ नई बातों का पता हो लग जायगा। मैंने दावसन्दूप से अपनी इच्छा प्रकट की। वह राज़ी हो गया।

शाम होते-होते हम दोनों उस गुम्बा (मठ) में पहुँचे। ल्हा-खङ्ग* में एक आसनी पर बैठा हुआ नालजोर्पा अभी-अभी अपना भोजन समाप्त कर रहा था। हमने प्रणाम किया। उत्तर में उसने केवल सर हिला दिया। हमारे लिए भी बैठने को आसनी आई और पीने को चाय मिली।

मैं सोच ही रही थी कि बातचीत का सिलसिला कैसे आरम्भ किया जाय कि वह विचित्र व्यक्ति एकाएक हँसने लगा और अपने आप न जाने क्या बड़बड़ाया। दावसन्दूप कुछ झिझका हुआ सा लगा।

"वह क्या कहता है?" मैंने पूछा।

"क्षमा कीजिए" मेरे लोचवे ने कहा—"ये नालजोर्पा कभी-कभी बड़ी भद्दी बातें कह देते हैं। मुझे आपसे बतलाने में हिचक होती है।"

"वाह! इसी तरह की सारी बातों की जानकारी करने तो मैं निकली हो हूँ।"

"अच्छा, तो माफ़ कीजिएगा मैं अनुवाद करता हूँ—"यह सुसरी यहाँ क्या बनाने आई है?"

इस असभ्यता से मुझे थोड़ा सा भी आश्चर्य नहीं हुआ। भारत में भी ऐसी कई साधुनी मेरे देखने में आई थीं जो प्रत्येक पास आनेवाले को गाली देने की एक आदत सी डाल लेती हैं।

---

* वह कमरा जिसमें धार्मिक मूर्त्तियाँ रक्खी जाती हैं।

"उससे कहो, मैं उसके पास यह जानने को आई हूँ कि वह दलाई लामा के हाथ से आशीर्वाद पाने के लिए इकट्ठी हुई भीड़ में क्या देखकर हँसा था।"

"नाबदान में बज-बज करते हुए तुच्छ कीड़े! अपने ऊपर और अपने कृत्यों पर इन्हें कितना बड़ा अभिमान होता है। छिः!"

"और आप?" मैंने पूछा "क्या आप तक कोई गन्दगी नहीं छू गई है?"

वह ज़ोरों से हँसा।

"जो बाहर निकलना चाहता है उसे तो और भीतर डुबकी लगानी पड़ती है। मैं उस गन्दे नाले में सुअर की तरह लोटता हूँ। और उसे स्वच्छ पानी के झरने में परिणत कर देता हूँ। घूरे में से सोना पैदा करना—यह हम जैसे खिलाड़ियों का खेल है।"

"तो क्या........."

"हम गुरु पद्मसम्भव के एक मामूली चेले हैं, पर फिर भी"...

मैंने देखा कि 'मामूली चेले' का दिमाग़ किसी ऊँचे आसमान पर था; क्योंकि 'फिर भी' कहते समय उसकी आँखों में एक ऐसी चमक थी जिससे बहुत सी बातों का पता चलता था।

इधर मेरा दुभाषिया रह-रहकर इधर-उधर देखता था। उसका मन नहीं लग रहा था। दलाई लामा के लिए उसके हृदय में असीम श्रद्धा थी और वह अपने कानों से यह निन्दा नहीं सुन सकता था। फिर 'घूरे में से सोना पैदा करनेवाले उस खिलाड़ी' से उसे एक प्रकार का जो भय सा लग रहा था वह अलग।

मैंने वहाँ से चल देने का विचार किया और नालजोर्पा को दे देने के लिए कुछ रुपये दावसन्दूप के हाथ में रख दिये। किन्तु इस भेंट से वह बिगड़ खड़ा हुआ। उसने उसे अस्वीकार भी कर दिया।

दावसन्दूप ने और आग्रह करना उचित समझा। लामा के पास एक चौकी पर रुपये रख देने के लिए वह आगे बढ़ा। एकाएक वह ठिठका, कुछ पीछे हटा और दीवाल के सहारे उसने इस ज़ोर से पीठ का सहारा लिया जैसे किसी ने उसे बलपूर्वक पीछे को ढकेल दिया हो। कराहकर उसने अपने पेट को दोनों हाथों से दबोच लिया। नालजोर्पा उठा और छींकता-छींकता कमरे से बाहर हो गया।

"न जाने किसने मुझे बड़े ज़ोर का धक्का दिया। नालजोर्पा रुष्ट हो गया है। अब क्या होगा?" मैंने कहा—"नालजोर्पा की बात छोड़ो। आओ चलें। मालूम होता है, तुम्हारे फेफड़े में कोई शिकायत है। अच्छा होगा यदि किसी डाक्टर को दिखलाओ।"

दावसन्दूप कुछ बोला नहीं। बड़ी देर तक वह डर के मारे सहमा रहा। हम अपने ठिकाने भी पहुँच गये, पर उसे मेरी बात पर विश्वास नहीं हुआ।

दूसरे दिन हमने गङ्गटोक के लिए प्रस्थान किया।

मेरे गङ्गटोक तक पहुँचते-पहुँचते बड़े ज़ोरों की आँधी आई और पत्थर पड़ने लगे।

तिब्बतियों का विश्वास है कि इस प्रकार के सारे दैवी प्रकोप दैत्यों और जादूगरों के कृत्य होते हैं। पत्थरों की वर्षा तो उनका एक विशेष अस्त्र होता है, जिसका उपयोग वे बेचारे यात्रियों के मार्ग में रोड़े अटकाने के लिए या कमज़ोरदिल चेलों को अपने पास से दूर ही रखने के लिए करते हैं।

कुछ दिन बीत जाने पर मन्त्र-तन्त्र में विश्वास रखनेवाले दावसन्दूप ने मुझे बतलाया भी कि वह पहले ही किसी म्पा (ज्योतिषी) से मिला था। उस गुनी ने बतलाया था कि

आसपास के देवी-देवता तो मुझसे अप्रसन्न नहीं हैं, किन्तु मुझे मार्ग में कुछ कठिनाइयों का सामना अवश्य करना पड़ेगा। उसकी यह भविष्यवाणी सच भी हुई।

मैं सिक्कम में अपने पूर्व-परिचित 'अवतारी लामा' से मिला। उसने सहर्ष मेरा स्वागत किया। उसे मेरे खोज के काम में दिलचस्पी लेते देर न लगी। बड़े उत्साह के साथ उसने इस काम में मुझे मदद दी।

सिक्कम में मेरा काम सबसे पहले मठों की जाँच करना हुआ। तराई के जङ्गलों में इधर-उधर कुछ यहाँ और कुछ वहाँ—प्राय: पहाड़ी की चोटियों पर स्थित ये गुम्बाएँ बड़ी भली लगती थीं। किन्तु उनके बारे में मेरी जो धारणा थी, वह ग़लत साबित हुई। सिक्कम की गुम्बाएँ बड़ी दीन-हीन अवस्था में हैं। उनकी आमदनी बहुत थोड़ी है। यहाँ के धनिकों में से कोई भी उनमें कुछ साहाय्य नहीं देता है और यहाँ के शिक्षार्थी (त्रापाओं) को स्वयं अपने ख़र्च के लिए काम करना पड़ता है।

जब कोई मर जाता है तो उसके श्राद्ध कराने का गुरुतर भार इन्हीं मठ के साधुओं के सर पर पड़ता है और इस काम को ये बड़े चाव से करते भी हैं। बात यह है कि श्राद्ध के बाद तरह-तरह के माल पर हाथ साफ़ करने का मौक़ा मिलता है और दक्षिणा से जेब अलग गरम होती है। कोई कोई तो बेचारे अपने घर भर-पेट खाना तक नहीं पाते हैं और जब कोई पैसेवाला यजमान मर जाता है तो ऐसों की बन आती है।

बहुत से गाँवों में लामा पुरोहितों की जगह तान्त्रिक ले लेते हैं। पर इससे उनमें परस्पर कोई द्वेष नहीं पैदा होता। एक हद तक कह सकते हैं कि एक दूसरे की विद्या में विश्वास भी रखता है। लामा का आदर पुराने मतावलम्बी बोन और ङ्-ग्-स्पा (राज्य-

धर्म में आ जानेवाले मान्त्रिक) से अधिक होता अवश्य है किन्तु मन्त्र-तन्त्र में जीवित और मृतक आत्माओं को तङ्ग करनेवाले पिशाचों के शमन करने के लिए अधिक शक्ति मानी जाती है।

मरे हुए मनुष्य के शरीर से बाहर उसकी आत्मा कैसे निकाली जाती है और कैसे उसे परलोक के सच्चे मार्ग का निर्देश किया जाता है—यह भी देखने का अवसर दैव-योग से मेरे हाथ अपने आप लग गया।

उस दिन मैं जङ्गलों से घूम-फिरकर लौट रही थी। अकस्मात् मेरे कानों में किसी जानवर की ऐसी तेज़ चीख़ सुनाई पड़ी जैसी मैंने पहले कभी नहीं सुनी थी। एक मिनट बाद वह फिर सुनाई दी। दबे पाँवों मैं उसी ओर आगे बढ़ी और चुपके से एक झाड़ी में छिपकर बैठ गई।

एक पेड़ के नीचे दो लामा ध्यानावस्थित हो पालथी मारे बैठे थे

'हिक्!' उनमें से एक, अजीब भयावने स्वर में, चिल्लाया।

'हिक्!' कुछ क्षण बाद दूसरा भी चिल्लाया।

इसी प्रकार बारी-बारी से रुक-रुककर वे मन्त्र का उच्चारण करते थे। बीच-बीच में जब वे चुप होते तो बिल्कुल शान्त—उनके शरीर का एक अङ्ग भी हिलता-डुलता न था।

मैंने देखा कि इस 'हिक्' के उच्चारण में उन्हें काफ़ी मेहनत पड़ती है। थोड़ी देर बाद उनमें से एक त्रापा ने अपने गले पर हाथ रक्खा। उसके चेहरे की आकृति बिगड़ गई और उसने एक ओर मुँह फेरकर थूका। उसके थूक में लाल-लाल ख़ून साफ़ दिखलाई पड़ता था।

उसके साथी ने कुछ कहा। मैं इसे सुन न सकी। बिना उत्तर दिये हुए वह उठा और गुफा की ओर गया। मैंने उसके सर के

बीचोबीच एक बड़ा लम्बा सा तिनका सीधा खड़ा देखा। यह क्या बला थी, मेरी समझ में कुछ भी नहीं आया।

बाद को दावसन्दूप से ज्ञात हुआ कि ये लोग मृतक शरीर से उसकी आत्मा को स्वच्छन्द कर रहे थे। मन्त्र के बल से खोपड़ी का सिरा (ब्रह्माण्ड) खुल जाता है और एक छोटे से छेद के मार्ग से प्राणात्मा शरीर को त्यागकर बाहर आ जाती है।

मन्त्र का उच्चारण ठीक-ठीक सही रूप में होना चाहिए। यह काम केवल वही लामा कर सकता है, जिसने अपने गुरु के चरणों के समीप कुछ समय तक रहकर शिक्षा-दीक्षा ली हो। 'हिक्' के बाद 'फट्' का उच्चारण करना होता है और तब जीवात्मा के शरीर से बाहर निकलने के लिए ब्रह्माण्ड में एक मार्ग खुल जाता है। मन्त्र का ठीक-ठीक उच्चारण न करने में स्वयं अपनी जान का खतरा रहता है। जब लम्बा तिनका सिर पर अपनी इच्छा के अनुसार ठीक सीधा खड़ा रह जाय तब समझना चाहिए कि मन्त्र के पढ़ने की विधि भली भाँति आ गई।

मृत्यु और परलोक से सम्बन्ध रखनेवाले सभी सवालों में दावसन्दूप को बड़ी दिलचस्पी थी। आगे चलकर पाँच या छः वर्ष बाद उसने इस विषय की एक तिब्बती पुस्तक का सुन्दर अनुवाद भी किया।

प्रेत-विद्या में उसका विश्वास था और वह स्वयं जब-तब मन्त्र जगाता था। लेकिन पेट का चारा चलाने के लिए विवश होकर उसे नौकरी का सहारा लेना पड़ा था। भारत-सरकार ने उसे भूटान की दक्षिणी सीमा पर दुभाषिये का काम करने के लिए नियुक्त कर दिया था।

दावसन्दूप से जब मेरी भेंट हुई तब वह सरकारी नौकरी छोड़-कर गङ्गटोक के तिब्बती स्कूल का हेडमास्टर हो गया था। पर

उसे पढ़ाने से अधिक पढ़ने का शौक़ था। वह हफ़्तों स्कूल नहीं जाता था। इतने समय में वह अपनी किताबों में भूला रहता था या और लामाओं के साथ बैठकर धर्म-चर्चा किया करता था। अपना सब काम उसने अपने सहायक अध्यापक को सौंप रक्खा था, जिसे उससे कुछ अधिक लड़कों की परवाह न थी। परवाह थी उसे सिर्फ़ एक बात की—कि कहीं उसकी नौकरी छूट जाने की नौबत न आ जाय और इस बात का अलबत्ता उसे बराबर ध्यान बना रहता था।

इस प्रकार स्वतन्त्र छोड़ दिये गये लड़के अपने अधिकारों का पूरा-पूरा उपयोग करते थे। जो कुछ थोड़ा-बहुत सबक़ उन्हें याद भी हो जाता, उसे खेल-कूद में भूलते उन्हें देर न लगती। फिर एक दिन वह आता जब दावसन्दूप अपने शिष्यों के सामने यमराज की भाँति कठोर बनकर आता। सब लड़के एक पंक्ति में उसके सामने आकर खड़े हो जाते। तब सबसे किनारे खड़े हुए लड़के से कोई सवाल किया जाता। अगर उसने उसका उत्तर दिया तो दिया नहीं तो उसके पास खड़ा हुआ दूसरा लड़का जवाब देता। ठीक जवाब देने पर वह अपने बग़ल के साथी को एक चपत रसीद करता और अपनी जगह पर उसे करके स्वयं उसकी जगह पर खड़ा हो जाता। पिटनेवाले बेचारे लड़के को इतने से ही छुट्टी न मिलती। उससे दूसरा सवाल पूछा जाता। उसका भी जवाब न दे सकने पर उसके बग़ल में खड़ा हुआ यानी क़तार का तीसरा लड़का उत्तर देकर उसे उसी तरह थप्पड़ मारकर उससे अपने स्थान की बदली कर लेता। कभी-कभी तो आफ़त का मारा कोई बेचारा इसी तरह चपत पर चपत खाता हुआ हतबुद्धि होकर पंक्ति के एक सिरे से बिल्कुल दूसरे किनारे तक पहुँच जाता।

कभी-कभी जब दोस्ती निभाने का सवाल आ पड़ता तो थप्पड़ जमानेवाले का हाथ उठता तो बड़े ज़ोर से लेकिन ठीक जगह पर पहुँचने से पहले बीच में ही उसका सारा ज़ोर ख़तम हो जाता। पर दावसन्दूप उड़ती चिड़िया पहचानता था। वह सब समझता था। ऐसे लोगों के लिए उसके पास दूसरी दवा थी।

"अच्छा अच्छा, इधर आओ, तुम्हें अभी पता नहीं; थप्पड़ भी ठीक नहीं जमाना आता। चलो इधर, आओ हम अच्छी तरह सिखा देंगे।"

अब वह थप्पड़ लगाना अच्छी तरह सीख गया है—इसका परिचय उसे अपने साथी के गाल पर दुबारा चपत लगाकर देना होता। साथ ही अपने नये सीखे हुए सबक़ को भी शीघ्र भूलने की उसकी हिम्मत नहीं पड़ती थी।

दावसन्दूप के बारे में मुझे और भी कई मज़ेदार बातें याद हैं लेकिन मेरा अभिप्राय कदापि उसकी हँसी उड़ाने का नहीं है। ऐसे भलेमानस देखने-सुनने में कम आते हैं और यह मैं अपना परम सौभाग्य समझती हूँ कि ऐसे योग्य दुभाषिये से मेरी भेंट हो गई थी।

× × × ×

सिक्कम का उत्तराधिकारी कुमार विद्वानों का बड़ा आदर करता था। उसने त्राशिल्हुम्पो के सुप्रसिद्ध महाविद्यालय के माननीय दार्शनिक कुशोग् चोस्-दू-ज़ेद को अपने यहाँ अतिथि बनाकर रक्खा था। कुशोग् राजधानी के पास ही एन-चे की गुम्बा के महन्त बना दिये गये थे और उन्हें कोई बीस चेलों को व्याकरण और धर्मशास्त्र पढ़ाने का पवित्र कार्य्य भी सौंपा गया था।

कुशोग् चोस्-दू-ज़ेद एक गेलुग्स-पा अर्थात् त्सौंग खापा (१४०० ई०) के नये मत 'पीली टोपी'वाले लोगों के सम्प्रदाय के अनुयायी

थे। विदेशी लेखक पीली और लाल टोपीवाले वर्गों के धार्मिक सिद्धान्तों में परस्पर बड़ा भेद बताते हैं, लेकिन एन-चे के विहार में एक गेलुग्स-पा को लाल टोपीवाले लोगों के साथ मिलकर सभापति की हैसियत से सभाकार्य्य चलाते देखकर शायद उन्हें अपनी भूल ज्ञात हो जाती।

अक्सर भेंट-मुलाक़ात करने के लिए मैं कुशोग् की गुम्बा में जाती थी। प्राय: हममें धार्मिक वार्त्तालाप ही छिड़ जाता। लामा लोगों के धर्म के विषय में इस तरह से खोद-खोदकर प्रश्न करने से उन्हें मेरे ऊपर सन्देह हुआ। एक रोज़ अकस्मात् बातें करते-करते उन्होंने मेज़ की दराज़ खोलकर काग़ज़ का एक बड़ा पुलिन्दा बाहर निकाला और बौद्धधर्म से सम्बन्ध रखनेवाले सवालों की उस लम्बी सूची का उत्तर वहीं उसी दम मुझसे देने को कहा। सवालों से साफ़ पता चलता था कि वे मुझे घबरा देने के लिए ही ढूँढ़-ढूँढ़कर चुने गये थे। उनका कोई ख़ास मतलब भी नहीं निकलता था। जो हो, मैंने बारी-बारी से इन सब सवालों का जवाब दे दिया और मैं परीक्षा में पूरी उतरी। इसके बाद फिर कभी उसे मेरे ऊपर सन्देह करने का साहस नहीं हुआ और वह मुझसे बहुत सन्तुष्ट रहने लगा।

बर्मियग कुशोग् नामक एक दूसरे विद्वान् को महाराजा सिद्-क्योंग ने अपने महल ही में आश्रय दिया था। धार्मिक वाद-विवाद में महाराजा को बड़ा आनन्द आता था।

महाराजा सदैव अपनी भड़कीली पोशाक पहनकर बीचोबीच में एक सोफ़े पर बैठते। उनके सामने एक मेज़ रख दी जाती। इस मेज़ के एक ओर एक लम्बी कुरसी पर मैं बैठती थी। हम दोनों के सामने बढ़िया चीनी मिट्टी का एक एक प्याला रख दिया जाता, जिसके साथ में चाँदी की एक तश्तरी और मूँगे और फ़ीरोज़ों

से मढ़ा हुआ एक ढक्कन होता था। महाराजा से कुछ दूर हटकर मेरी ही तरह की एक कुरसी पर अपना लम्बा लबादा शान से ओढ़कर बर्मियग भी बैठते। उन्हें भी एक प्याला और चाँदी की तश्तरी मिलती लेकिन उनके सामने ढक्कन नहीं होता था। दावसन्दूप भी अक्सर मौजूद रहता था। वह वहीं फ़र्श पर हमारे पैरों के पास आसन जमाता। वह पालथी मारकर बैठ जाता और उसके सामने दरी पर एक प्याला रख दिया जाता था।

इस प्रकार तिब्बती शिष्टाचार के कड़े और बेढंगे नियम बर्ते दिये जाते थे।

तब एक युवक भृत्य चाँदी की एक बहुत बड़ी देगची हाथों में कन्धे के ऊपर लिये हुए प्रवेश करता और बड़े अदब और अदा के साथ झुक-झुककर हमारे प्यालों में चाय गिराता जाता। उसके ढंग से साफ़ ज़ाहिर था कि वह अपने इस महत्त्वपूर्ण कार्य्य के गौरव से भली भाँति परिचित था।

चाय के साथ-साथ मक्खन और नमक का भी व्यवहार होता था। कमरे के कोनों में अगरबत्तियाँ सुलगती रहतीं और कभी-कभी दूर के किसी मन्दिर से संगीत का धीमा स्वर हमारे कानों तक पहुँचता रहता। इस बीच में विद्वान् और कुशल उपदेशक बर्मियग कुशाग् का व्याख्यान भी चलता रहता—

"अमुक-अमुक ऋषि इस विषय में ऐसा-ऐसा कह गये हैं। फ़लाँ-फ़लाँ जादूगरों ने कौन-कौन से चमत्कार दिखलाये हैं। इनमें से बहुत से तो अब भी पास के पहाड़ों में मौजूद हैं लेकिन उनके पास तक पहुँच सकना ज़रा टेढ़ी खीर है"........

कुशाग् चास्-दु-ज़े द और बर्मियग् कुशोग् तिब्बत के दो प्रमुख सम्प्रदाय पीली टोपी और लाल टोपीवाला के प्रतिनिधि-स्वरूप थे। इनके सम्पर्क में आकर बहुत-सी जानने योग्य बातों का पता चला।

मृत्यु और परलोक के विषय में लामा लोगों के बड़े मनोरञ्जक और भिन्न-भिन्न विचार हैं। बहुत से विदेशियों को ये बातें अज्ञात हैं। इस सम्बन्ध में जानकारी हासिल करने का शौक़ मुझे इन्हीं दो विद्वानों के सम्पर्क में आकर हुआ।

मृत्यु के बाद तुरन्त ही जीव की क्या दशा होती है—इस विषय में तिब्बती लामाओं और बर्मा, लंका, स्याम आदि दक्षिणी देशों के बौद्धों में परस्पर मतभेद है। आम तौर पर बौद्धों की धारणा है कि मृत्यु के पश्चात् तत्काल ही जीव का मृत्युलोक में पुनः आगमन हो जाता है। और अपने कर्मों के अनुसार उसे अच्छी या बुरी योनि में जन्म लेना पड़ता है। किन्तु तिब्बती लामाओं का विश्वास है कि मृत्यु के अनन्तर कुछ समय बीत जाता है और तब कहीं छः जीवधारियों में से किसी एक में जीवात्मा जन्म लेती है।

"जो युक्तिवान् है वह नरक में भी सुखभोग कर सकता है" तिब्बत में एक प्रचलित कहावत है। 'थब्' अर्थात् ढब से लामा लोगों का क्या अभिप्राय होता है, इसका आभास पाठक को इससे मिल जायगा। जो वास्तविक 'थब्' का ज्ञाता है वह जहाँ तक सम्भव है, अपनी इच्छा के अनुसार जिस योनि में चाहे फिर जन्म ले सकता है।

"जहाँ तक सम्भव है" तिब्बती लामा कहते हैं—"पूर्व जन्म के कर्मों के फलाफल का भार भी इस 'थब्' को काफ़ी हद तक प्रभावित करता है।"

करामाती लामा लोगों के बारे में यह कहा जाता है कि उन्हें अपनी मृत्यु का पता कुछ समय पहले से ही लग जाता है। मृत्यु की भयंकर यातनाओं का उन्हें कुछ भी भय नहीं रहता और मरते समय वे पूर्ण रूप से सजग और सचेत रहते हैं। क्या हो रहा

है, किन-किन अज्ञात और विचित्र लोकों से होकर उनकी आत्मा गुज़र रही है, किधर क्या है—इन बातों का पता उन्हें भलो भाँति चलता रहता है।

परन्तु साधारण लोगों के सम्बन्ध में यही बात लागू नहीं होती। जो लोग मृत्युशास्त्र की ज्ञातव्य बातों से अनभिज्ञ रहते हैं उन्हें मरते समय और मरने के बाद दूसरों की मदद लेनी पड़ती है। जो बातें उन्होंने जीवित रहकर नहीं सीखी हैं वही उन्हें मरते समय और मरने के बाद एक अनुभवी लामा सिखाता है। मार्ग में मिलनेवाले सभी प्रकार के विचित्र जीवों और बाधाओं से वह उनका पूरी तरह परिचय करा देता है, विश्वास दिलाता है और निरन्तर पथ का निर्देश करने को तत्पर रहता है।

मरता हुआ मनुष्य एकदम अचेत न होने पावे, इस बात का लामा को बड़ा ध्यान रखना पड़ता है। धीरे धीरे भिन्न भिन्न इन्द्रियों की विभिन्न व्यापारशक्ति के क्षीण होने की ओर वह बराबर जीवात्मा का ध्यान आकृष्ट किये रहता है। अन्त में प्राण-पखेरू को काया के पिञ्जरे से मुक्त करने के लिए लामा प्रयत्नशील होता है। यह आवश्यक है कि प्राणवायु ब्रह्माण्ड के मार्ग से ही बाहर निकले। ऐसा न होने पर जीव का भविष्य घोर अन्धकार में जा पड़ता है।

जीवात्मा की विधिवत् मुक्ति के लिए 'हिक्' और 'फट्' का ठीक-ठीक उच्चारण करना पड़ता है। जिस करामाती लामा को इन शब्दों का ठीक उच्चारण आता है, उसे अपनी मृत्यु के समय किसी दूसरे व्यक्ति को समीप रखने की आवश्यकता नहीं रहती। जब नियत समय आने को होता है तो उसे पहले से ही पता चल जाता है और वह मन्त्र पढ़ना आरम्भ कर देता है। 'हिक्' और 'फट्' चिल्लाते-चिल्लाते वह प्राणत्याग करता है।

इस ढङ्ग पर बहुत से लामा आत्महत्या के कठिन कार्य में सहज ही सफलश्रम हो जाते हैं और सुनने में आता है कि बहुतों ने सचमुच ही ऐसा किया भी है।

जीवात्मा काया से उन्मुक्त होकर एक अज्ञात पथ की ओर अग्रसर होती है। आम लोगों में यह विश्वास है कि आत्मा सचमुच ही कोई यात्रा करती है और उसे मार्ग में मिलनेवाले देशों और जीवों की कोई वास्तविक स्थिति होती है। किन्तु और समझदार लामा इस यात्रा को केवल स्वयं-निर्मित भ्रम मात्र मानते हैं। उनका कहना है कि जीवात्मा अपने आप गत जन्म के आचार-विचार के आधार पर एक प्रकार के धुँधले छाया-स्वप्न का निर्माण करती चलती है।

कुछ ऐसे भी लोग हैं जो कहते हैं कि आत्मा के शरीर से मुक्त होने के थोड़ी देर बाद ही उसका एक प्रकार के दिव्य प्रकाश से साक्षात्कार होता है। इस तेज के सामने उसकी आँखें अगर ठहर गईं—वह अन्धा नहीं हो गया—तो उसे निर्वाण की प्राप्ति हो जाती है; नहीं तो फिर उसी आवागमन के चक्र चलने की प्रणाली आरम्भ होती है।

तिब्बत में ऐसे लोगों की कमी नहीं है जो अपने समय का अधिक हिस्सा बेकार काहिली में बैठे-बैठे बिता देते हैं। इनसे तरह-तरह की अनूठी बातें सुनने को मिलती हैं। बहुतों का यह दावा है कि उन्होंने ऐसे लोकों में भ्रमण किया है, जहाँ साधारण मनुष्य केवल मरकर ही पहुँच सकते हैं। ऐसे लोकों को "बार्डो" और इनसे लौटे हुए इन विचित्र जीवधारियों को 'देलाग्' कहते हैं।

त्सौरंग के गाँव में एक बुढ़िया से मेरी भेंट हुई जो कुछ साल पूर्व बराबर एक साल तक निर्जीव सी बनी रही। उसका कहना था कि उसे स्वयं अपने शरीर की स्फूर्ति और हल्केपन पर बड़ा

अचम्भा होता था। वह जब जहाँ चाहे जा सकती थी, वह आसानी से पानी के ऊपर चलकर नदियों को पार कर जाती और दीवालों के भीतर होकर उस पार निकल सकती थी, हवा में उड़ सकती थी.........आदि-आदि।

किसी के मर जाने पर तो और तमाशा देखने में आता है। मरे हुए मनुष्य को उल्टे कपड़े—आगे का भाग पीछे पीठ की ओर करके—पहना दिये जाते हैं और उसके पैर छाती पर एक दूसरे के ऊपर मोड़ दिये जाते हैं। तब यह गट्ठर एक बड़े कड़ाह में डाल दिया जाता है जिसमें कभी-कभी वह पूरे एक हफ़्ते तक पड़ा रहता है। इसी बीच में श्राद्ध के उपचार होते रहते हैं। इसके बाद जैसे ही कड़ाह ख़ाली होता है, उसे थोड़ा सा धो-धाकर उसमें चाय तैयार होने को डाल दी जाती है। इसे श्राद्ध में सम्मिलित होने-वाले परिजन बिना किसी हिचक के पी जाते हैं।

जहाँ कहीं आसानी से लकड़ी मिल सकती है, वहाँ मृत शरीर को जला देते हैं। अन्यथा उसे जंगली जानवरों के लिए पहाड़ों पर छोड़ आते हैं।

बड़े बड़े धार्मिक महान् आत्माओं के शव को यत्न-पूर्वक सुरक्षित रखने की भी परिपाटी है। इन्हें 'मरदोङ्ङ्' कहते हैं। स्तूपों के आकार के चोर्टेन् में इन्हें बड़ी सजावट के साथ रख दिया जाता है, जहाँ ये अनन्त काल तक पड़े रहते हैं।

बौद्ध धर्म में दानशीलता का बड़ा महत्त्व माना गया है। श्राद्ध-अवसरों पर लामा लोगों को ऐसे पुण्य-कार्य्य में हाथ बँटाने का अच्छा मौक़ा मिल जाता है। मरे हुए आदमी की यह इच्छा होती है, कम से कम माना ऐसा ही जाता है कि उसका शरीर ही उसके मरने के बाद उसका आख़िरी दान हो—भूखे-प्यासे जीव-धारियों की क्षुधा शान्त करने में उसका उपयोग हो।

मृत मनुष्य की आत्मा को परलोक में ठीक रास्ते पर रखने के सम्बन्ध में तिब्बती में एक किताब है। उस पुस्तक में इस विषय पर लिखा है—

(१) शरीर को किसी पहाड़ी पर ले जाते हैं। हाथ-पैर तेज़ चाक़ू से काट डाले जाते हैं। हृदय और फेफड़े भूमि पर डाल दिये जाते हैं और चिड़ियाँ, भेड़िये और लोमड़ियाँ इनसे अपनी क्षुधा शान्त करती हैं।

(२) शरीर को किसी पवित्र नदी में विसर्जन कर दिया जाता है। रक्त नीले जल में मिल जाता है; मांस और चर्बी से मछलियाँ और ऊदबिलाव अपना भोजन प्राप्त करते हैं।

(३) शरीर का दाह-कर्म कर दिया जाता है। मांस, चर्बी और हड्डी जलकर भस्म की ढेरी हो जाते हैं। गन्ध से तिस्तगण का पालन-पोषण होता है।

(४) शरीर पृथ्वी के भीतर गाड़ दिया जाता है। इससे कीड़ों को आहार मिलता है।

जो लोग पैसेवाले होते हैं वे श्राद्ध करनेवालों को छः-छः हफ़्ते तक लगाये रखते हैं। प्रतिदिन वे ही उपचार बार बार किये जाते हैं। आख़िर में लकड़ी का एक हल्का टट्टर बनाकर तैयार किया जाता है। इसे मरे हुए मनुष्य के सब कपड़े पहना दिये जाते हैं और धड़ के ऊपर उसी की मुखाकृति का काग़ज़ का बना हुआ एक चेहरा रँगकर रख दिया जाता है। कभी उसका नाम भी ऊपर लिख देते हैं। इसके बाद उस टट्टर के मुँह में श्राद्ध करानेवाला आग लगा देता है। कहना न होगा कि उस पर के वस्त्रों को वह पहले से ही उतार लेता है। ये कपड़े उसकी निजी सम्पत्ति होते हैं।

इसके बाद मृतात्मा का मृत्युलोक से सब प्रकार का सम्बन्ध टूटा हुआ समझ लिया जाता है। लेकिन उसके भूत बनकर फिर आने की सम्भावना बनी रहती है। इस प्रेत-शंका के निवारण के लिए शव के घर से बाहर होते ही उसके नाम पर एक बड़ा सहभोज किया जाता है जिसमें घर का बड़ा-बूढ़ा खड़ा होकर मृत जीव की आत्मा को सम्बोधित करके यों कहना शुरू करता है—"अमुक-अमुक...सुनो...तुम अब मर चुके हो। इस बात में किसी तरह का सन्देह मत रखना। यहाँ अब तुम्हारा कोई काम नहीं है। ख़ूब डटकर अन्तिम बार अपना खाना खा लो। तुम्हारे सामने का रास्ता बड़ा लम्बा और बहुत टेढ़ा है। तुम्हें मार्ग में बहुत से पहाड़ और नाले पार करने पड़ेंगे। साहस बटोर लो। अच्छी तरह समझ लो कि अब यहाँ वापस नहीं लौटना है।"

एक जगह तो इससे भी अधिक मनोरञ्जक वार्तालाप सुनने में आया—"पाग्दज़िन, तुम्हें इस बात का पता होना चाहिए कि तुम्हारे घर में आग लग गई थी और उसमें सब कुछ स्वाहा हो गया है। तुम शायद कोई क़र्ज़ा चुकाना भूल गये थे, इसलिए तुम्हारे दोनों लड़के पकड़ लिये गये हैं। तुम यह भी न जानते होगे कि तुम्हारे बाद तुम्हारी स्त्री ने क्या किया। उसने दूसरी शादी कर ली है। यह सब देखकर तुम्हें बहुत दुःख होगा। इसलिए अब तुम फिर यहाँ लौटने की मूर्खता मत करना।"

मैं शोकपूर्वक यह सब दुःख-वृत्तान्त सुनती रही। मुझसे रहा नहीं गया। मैंने पूछा—"आख़िर यह सब हुआ कैसे? विपत्तियों का यह पहाड़ क्या एकदम......"

सबके सब उल्टे मेरे ही ऊपर हँस पड़े। बोले—"अरे, यह सब तो झूठ है। हमने यों ही कह दिया। घर-बार सब दुरुस्त है।

दोनों लड़कों को गोद में बैठाकर स्त्री धूप खा रही है और उसके चौपाये खेतों में चर रहे हैं। पाग्दज़िन को डराने के लिए ही हमने यह कहानी गढ़ ली है ताकि वह फिर इधर घूमकर देखने का भी नाम न ले।"

मरने के बाद इस लोक में जन्म लेने के पूर्व कुछ समय तक आत्माएँ प्रेतलोक में घूमती रहती हैं। इनके बारे में कभी-कभी इनके परिवार के लोगों को बुरे-बुरे स्वप्न भी दिखलाई पड़ते हैं। इसका अर्थ यह समझा जाता है कि आत्मा बेचारी शैतान के चक्कर में पड़ गई है और उसे बड़ी-बड़ी यातनाओं और विपत्तियों का सामना करना पड़ रहा है। सम्बन्धी लोग तत्काल ही किसी चतुर 'पावो' को सहायतार्थ बुला भेजते हैं। वह आता है और मन्त्र का पाठ करना आरम्भ कर देता है। धीरे-धीरे वह नाचने लगता है। पहले धीरे-धीरे, फिर तेज़ और फिर और तेज़ी से। साथ-साथ डमरू बजता रहता है और घण्टे की ध्वनि होती रहती है। नाचते-नाचते उसकी दशा पागलों की सी हो जाती है और तब बस उसके शरीर के भीतर भूत आ जाता है। वह अस्फुट स्वर में कुछ कहना शुरू करता है, जिसे लोग बड़ी सतर्कता के साथ सुनते हैं। ऐसा विश्वास किया जाता है कि इसी साधन (मीडियम) के द्वारा मृत आत्मा जो कुछ सन्देश कहना चाहती है कहती है—"रास्ते में एक दैत्य से मेरी मुठभेड़ हो गई। वह मुझे अपना दास बनाकर अपनी गुफा में घसीट लाया है। दिन भर मुझसे कड़ी मेहनत लेता है। वह बड़ा कठोर है और मेरी बड़ी दुर्गति करता है। ईश्वर के लिए मुझ पर दया करके मुझे इस शैतान के चंगुल से छुटकारा दिलाओ, ताकि मैं जल्दी ही बाक़ी रास्ता तै कर डालूँ......आदि।"

जो प्रेतात्मा यह सब बोलती हुई समझी जाती है उसकी माता, स्त्री और बच्चे फूट-फूटकर रोने लगते हैं। उनका सबसे पहला काम किसी बोन मांत्रिक के पैरों पड़ना होता है।

"बिना एक सुअर या गाय की बलि दिये हुए काम नहीं बन सकता। दैत्य तो वश में आ जायगा, लेकिन इसके लिए काफ़ी सर मारना होगा। काम आसान नहीं है।"—बोन उन्हें समझा देता है।

बलि-पशु और अन्य जो-जो सामग्री वह माँगता है वह तत्काल जुटा दी जाती है। बलि चढ़ाकर बोन पूजा पर बैठता है और आँखें मूँदते ही वह दैत्य की गुफा में पहुँच जाता है। लेकिन दैत्य प्राय: अपना वादा तोड़ देता है। बलि पा लेने पर भी वह अपने बन्दी को मुक्त नहीं करता। तब लाचार होकर बोन उससे भिड़ जाता है और युद्ध के द्वारा उसे परास्त करके किसी तरह राह पर लाता है। हाथापाई करते करते वह थक जाता है, हाँफने लगता है और उसका शरीर पसीना-पसीना हो जाता है।

कुटुम्ब के सभी लोग बड़ी उत्कण्ठा से उसकी मुखमुद्रा की ओर ध्यान लगाये रहते हैं और जब बोन आँखें खोलते हुए मुस्कराकर बतलाता है कि मैंने दैत्य को परास्त कर दिया है तो उन भोले-भाले अभागों की ख़ुशी का कोई ठिकाना नहीं रहता।

किन्तु शायद ही कभी पहले ही प्रयत्न में बोन को सफलता मिलती हो। बार बार वही मन्त्रपाठ, पशु-संहार और अन्य उपचार किये जाते हैं और हर बार बोन मान्त्रिक की नई मेहनत के लिए नई दक्षिणा होती है।

पुनर्जन्म के पहले कुछ समय तक आत्माओं को 'बार्डो' में रहना पड़ता है। मृत्युलोक में उसे किस योनि में जन्म लेकर जाना पड़ेगा, इसका निर्णय शिञ्जे (यमराज) करता है।

शिञ्जे बहुत निर्दय न्यायाधीश है। पूर्वजन्म में जिसने जो-जो पाप या पुण्य कमाया है, उसी के अनुसार वह उसका फ़ैसला सुना देता है। चतुर लामा और मांत्रिक लोगों का कहना है कि यह फ़ैसला यथासम्भव कुछ हल्का भी बनाया जा सकता है। लेकिन पूर्वजन्म के कृत्यों का पलड़ा किस प्रकार भारी पड़कर सब प्रयत्नों को निष्फल कर देता है, इसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। यहाँ इस विषय में केवल एक मनोरञ्जक उदाहरण दिया जा रहा है।

एक बहुत बड़ा लामा जब तक जीवित रहा, अपना समय बेकार नष्ट करता रहा। युवावस्था में उसके सुभीते के लिए बढ़िया से बढ़िया पुस्तकालय और अच्छे से अच्छे शिक्षक जुटाये गये। लेकिन जब वह बूढ़ा होकर मरा तब उसे ठीक तौर पर अपना नाम भी लिखना नहीं आता था।

डुग्पा कोलेंग्स नामक एक मशहूर डबटोब* इन्हीं दिनों इसी ओर घूमते-घूमते आ पहुँचा; एक सोते के पास पहुँचकर उसने देखा कोई लड़की पानी लेने के लिए आई हुई है। डुग्पा ने न आव देखा न ताव, चट से आगे बढ़कर एकाएक उसका हाथ पकड़ लिया। लड़की कुछ बलिष्ठ थी और डबटोब के बचे हुए दाँत भी हिल ही रहे थे। वह हाथ छुड़ाकर भाग खड़ी हुई। माँ के पास पहुँचकर उसने सब कच्चा चिट्ठा कह सुनाया।

मा को बड़ा अचम्भा हुआ। लड़की के बयान से साफ़ ज़ाहिर था कि यह आक्रमणकारी सिवा डुग्पा कोलेंग्स के और कोई हो ही नहीं सकता था और डुग्पा ऐसी बदतमीज़ी कर नहीं सकता था। उसके किसी लड़की को पकड़ने का क्या मतलब था—यह उसकी समझ में बिल्कुल न आया। उसने सोचा, हो

---

* एक ऋषि या करामाती साधु।

न हो इसमें कोई भेद अवश्य है। साधारण सदाचार और शिष्टाचार के नियम सिद्ध पुरुषों के बारे में नहीं लागू हो सकते। वे जो कुछ करते हैं, सोच-समझकर। उनकी बातों का समझना हर एक व्यक्ति का काम नहीं है। अस्तु, उसने अपनी लड़की से कहा—"बेटी, जिस महान् पुरुष को तुमने देखा है वे और कोई नहीं, स्वयं डुग्पा कोलेंग्स हैं। वे जो कुछ करेंगे, भला ही करेंगे। तुम उल्टे पाँव वापस लौटो। उनसे क्षमा माँगना और वे जो कुछ आज्ञा दें उसका पालन करना।"

लड़की लौटी। उसने एक पत्थर पर डबटोब को चुपचाप विचारमग्न बैठे देखा। उस पर दृष्टि पड़ते ही डुग्पा हँस पड़ा और बोला—"बेटी, स्त्रियों को देखकर मेरे मन में कोई विकार उत्पन्न नहीं होता। बात यह थी कि समीप के विहार के बड़े लामा का देहावसान हो गया है। मुझे उनकी आत्मा बार्डो में भटकती हुई दिखलाई पड़ी थी और मैंने चाहा कि किसी प्रकार उनका जन्म फिर मनुष्य-योनि में हो जाय। मैंने प्रयत्न किया, लेकिन होनहार बलवान् है। कर्मों का फल कौन मेट सकता है? तुम भाग खड़ी हुईं और तुम्हारे जाने के बाद ही पास के खेतों में चरता हुआ गधों का वह जोड़ा मिल गया। मैंने अपनी आँखों से देखा है; और शीघ्र ही मठ के प्रधान लामा को गधे की योनि में जन्म लेकर फिर इस संसार में आना पड़ेगा।

× × ×

लिखते-लिखते मेरी डायरी एक दिन भर गई। मैंने उसे उलट-पलटकर देखा तो मालूम हुआ कि सिक्कम पहुँचने के बाद काफ़ी काम हुआ है। मैंने सोचा, थोड़ा विश्राम कर लेना ठीक होगा। मुझे कम्पा-दू-जोङ् और शिगाल्जे की सैर की सूझी। इसी बीच में सुनाई पड़ा कि चीनी लोगों की हार हो गई है और

शीघ्र ही दलाई लामा अपनी राजधानी ल्हासा को वापस लौटेंगे। मैं कुछ पहले ही कलिम्पोङ् पहुँच गई। मुझे दलाई लामा के दर्शन तो हो ही गये, साथ ही साथ मुझे उनसे दो-एक बातें कर सकने का भी सुयोग प्राप्त हो गया। बाद को कुछ लोगों ने मुझे विश्वास दिलाना चाहा कि इससे मेरे लोक और परलोक दोनों बन गये हैं।

कलिम्पोङ् छोड़ने के बाद मैं नैपाल चली गई और कुछ दिन वहाँ रहकर बनारस चली आई। तिब्बत जैसे विचित्र देश और रहस्य-पूर्ण वातावरण से मैंने अभी-अभी अपने को पृथक् किया था। अन्तर बहुत बड़ा था और कुछ दिनों के लिए शिव भगवान की इस पवित्र पुरी में मेरा मन विरम गया।

दूसरा अध्याय

लामा लोगों का आतिथ्य

अभी बनारस छोड़ने का मेरा विचार भी नहीं था कि परिस्थितियों ने कुछ ऐसा पलटा खाया कि एक दिन सबेरे उठकर मुझे चुपचाप हिमालय की तराई की ओर ले जानेवाली एक रेलगाड़ी को पकड़ना ही पड़ा।

गङ्गटोक पहुँचते-पहुँचते मालूम हुआ कि पुराने महाराजा अब इस संसार में नहीं रहे। उनके सुपुत्र युवराज सिद्क्योंग तुल्कु उनके उत्तराधिकारी हुए हैं। नये महाराजा ने जब मेरे आगमन का वृत्तान्त सुना तो वे बड़े प्रसन्न हुए। उनकी इच्छा हुई कि मैं कुछ दिनों तक उनकी राजधानी में रुककर तब आगे बढ़ूँ। मैं स्वयं अपने मन में ऐसा चाह रही थी। उनके प्रस्ताव को मान गई। मेरे रहने का प्रबन्ध भी गङ्गटोक से १० मील की दूरी पर वनस्थली में छिपी हुई पोदाऽङ् की गुम्बा (मठ) में लामा तुल्कु ने कर दिया।

मन्दिर में ही एक बड़ा विस्तृत कमरा मेरे रहने के लिए चुना गया। खाने के प्रबन्ध के लिए जो भोजनालय मिला वह कम छोटा न था। तिब्बती प्रथा के अनुसार मेरे नौकर रात को इसी में सोते भी थे।

दो बड़ी खुली खिड़कियों से होकर सूर्य्य का सारा प्रकाश मेरे कमरे में आता था। हवा की कमी न थी। मेंह और ओले भी कमरे में अक्सर बिना रोक-टोक आ जाते थे।

इस बड़े कमरे में एक कोने में मैंने एक तिपाई पर अपनी किताबें सजा दीं और अपनी फ़ोल्डिंग मेज़ और कुरसी ठिकाने से रख दी। यह मेरा 'काम करने का कमरा' हुआ। दूसरे कोने में लेटने का सामान लगाया गया। बीच में एक अच्छी-ख़ासी जगह बैठने-उठने के लिए निकल आई।

पोदाऽङ् के मन्दिर में दिन में दो बार—सूर्य्योदय और सूर्य्यास्त के समय—पूजा होती थी। ग्येलिऽङ्, रेंग दोऽङ् और नगाड़े का सम्मिलित स्वर बड़ा भला लगता था। सुनते-सुनते मैं अपने को भूल जाती थी। किसी गहरी सरिता के गम्भीर प्रवाह के समान रागिनी धीरे-धीरे चुपचाप आती और कानों में समा जाती थी। इस संगीत की स्वर-लहरी हृदय में एक विचित्र प्रकार के करुण भाव का सञ्चार करती थी। ऐसा प्रतीत होता था जैसे सदियों से खोई हुई मानवता के अवसाद को कोई हल्की किरण अँधेरे में भूलकर आ पड़ी हो।

तिब्बत में वर्ष भर में एक बार असुर-पूजा होती है। ऐसा संयोग हुआ कि मेरे वहाँ ठहरने के समय के भीतर ही यह पूजा आ पड़ी। लामा लोगों के प्रत्येक मठ में एक अलग मन्दिर या कमरे में इन असुरों की स्थापना होती है। साल भर में बस यही केवल एक बार इन्हें बाहर निकाला जाता है। बाक़ी समय में ये एक प्रकार से कारागार में पड़े-पड़े सड़ा करते हैं। ये असुर और कोई नहीं, भारतवर्ष के बहुत पहले के ही निकाले हुए प्राचीन देवता हैं। तिब्बती लोगों ने इनके ऊपर विशेष कृपा करके इन्हें अपने यहाँ आश्रय दे दिया है, परन्तु इनको विघ्नकारी और उपद्रवी समझकर इन्हें पूरे साल भर कारागार में बन्दी रखते हैं।

इन अभागे, देश से निकाले हुए, देवताओं में महाकाल सबसे प्रमुख है। महाकाल की मूर्ति संहारकर्त्ता शिव भगवान् का ही

रौद्र रूप है। अपनी विद्या के बल से महाकाल को अपना दास बनाकर लामा लोग उससे तरह-तरह का काम लेते हैं और सुनी अनसुनी करने पर निर्दयता-पूर्वक उसे दण्ड भी देते हैं।

किंवदन्ती है कि कर्मभा सम्प्रदाय के एक आदरणीय लामा ने महाकाल को अपना सेवक बनाकर रक्खा। जब वह चीन में था तो किसी कारण वहाँ के महाराजा उससे असन्तुष्ट हो गये। उन्होंने आज्ञा दी कि लामा की दाढ़ी घोड़े की पूँछ में बाँध दी जाय और घोड़ा दौड़ाया जाय। सङ्कट के समय लामा ने महाकाल का स्मरण किया, किन्तु महाकाल के पहुँचने में देरी हो गई। किसी तरह मन्त्र के बल से अपनी लम्बी दाढ़ी को चेहरे से दूर करके इस विपत्ति से लामा ने छुटकारा पाया। बाद में जब महाकाल उसके पास पहुँचा तो लामा ने क्रोध में आकर उस बेचारे को इतने ज़ोर का थप्पड़ लगाया कि यद्यपि इस घटना को हुए कई सौ वर्ष व्यतीत हो गये, लेकिन आज भी उसके गाल वैसे ही फूले हुए हैं।

यहाँ और दूसरे मठों में भी, कहा जाता है कि, विचित्र प्रकार की अनहोनी बातें देखने में आती हैं। कभी-कभी महाकाल के पास सामने के चबूतरे पर रक्त की बूँदें टपकी हुई मिलती हैं और कभी-कभी आदमी के दिल या दिमाग़ का बचा हुआ भाग। लामा लोगों का कहना है कि ये चिह्न भयङ्कर देवता के कुपित होने का परिचय देते हैं।

महाकाल की मूर्त्ति को त्रापा लोग मन्त्र का पाठ करते हुए बड़ी सावधानी के साथ बाहर निकालते हैं और एक अँधेरे कठघरे में ले जाकर रख देते हैं। दो चेले उस पर पहरा देने के लिए तैनात कर दिये जाते हैं जो बराबर मन्त्रों का उच्चारण करते रहते हैं। एक क्षण के लिए उनके होंठ रुके कि महाकाल छुड़ाकर भागा।

मैंने देखा कि मन्दिर में रहनेवाले छोटे-बड़े सभी लोग वहाँ जमा होकर धीरे-धीरे कोई मन्त्र दुहरा रहे हैं। छोटे-छोटे बच्चे रात-रात भर जागते रहने के प्रयत्न में बैठे-बैठे थक जाते हैं। उन्हें डर लगा रहता है कि जहाँ एक क्षण के लिए उनकी आँखें झँपीं, उनका मन्त्रपाठ रुका, महाकाल छूट जायगा और सबसे पहले वे ही उसके कोप के भागी होंगे। कुछ समय के लिए पास के छोटे-छोटे गाँवों में तो पूरी खलबली मच जाती है। महाकाल को इस स्वतन्त्रता से उनके सभी बाहरी दैनिक कार-बार रुक जाते हैं। वे साँझ ही को अपने घर दरवाज़े भीतर से बन्द कर रखते हैं और माताओं की अपने बच्चों को कड़ी हिदायत रहती है कि वे सूर्य्य डूबने के पहले ही घर वापस लौट आवें।

साधारण ताक़त रखनेवाले असुर लोगों को क्षति पहुँचाने के दाँव में देश में इधर-उधर घूमते रहते हैं। मन्त्रबल से इनको एक स्थान पर बुलाकर इन्हें पतली लकड़ी और रङ्ग-बिरङ्गे धागों से बने हुए एक सुन्दर पिंजड़े में घुसने के लिए विवश किया जाता है। इसके बाद यह छोटा पिंजड़ा और उसके बदनसीब बन्दी एक अग्निकुण्ड में सावधानी के साथ डाल दिये जाते हैं।

परन्तु मान्त्रिकों के भाग्य से ये असुर अमर होते हैं। हर दूसरे साल फिर वे ज्यों के त्यों जी उठते हैं और फिर उनका विनाश करने के लिए वे ही उपचार करने पड़ते हैं। इस भाँति मान्त्रिकों की रोज़ी की समस्या भी सहज ही में हल होती रहती है।

यह सब तमाशा मुझे अपनी आँखों से देखने का अवसर मिला। इतनी सावधानी से काम लेने पर भी कुछ लामाओं को यह शङ्का बनी रही कि अभी सब असुर उनके फन्दे में नहीं आ सके। ये कुछ जो पकड़े जाने से बच गये हैं—देश में घूम-घूमकर शैतानी करने का मौक़ा ढूँढ़ रहे हैं। इनसे निबटने के लिए लामा

लोगों ने एक ऐसे व्यक्ति को खोजा, जिस पर उन्हें कुछ अधिक विश्वास था।

एक शाम को लाछेन का गोमछेन बुलाया गया। वह पूरा जादूगरों का सा बाना बनाकर और नरमुण्डों की माला गले में डालकर बाहर मैदान में सबके सामने निकला। धधकती हुई आग के सामने खड़े होकर वह अपने जादू के खञ्जर (फुर्बा) से बड़ी देर तक हवा में न जाने कौन-कौन निशान बनाता रहा। वह किन अदृश्य दैत्यों से लड़ रहा था, इसका तो मुझे पता नहीं चला लेकिन मैंने देखा कि अँधेरे में अकेला ऊपर को उठती हुई लहरों के सामने खड़ा वह स्वयं एक दैत्य से कम भयंकर नहीं दीखता था।

यद्यपि मैं पोदाऽङ् में निश्चित रूप से ठहरी हुई थी फिर भी सिक्किम की सीमा के बाहर तक मेरा आना-जाना नहीं रुका था। पूर्वी तिब्बत से दो गोमछेन हिमालय की पहाड़ियों में रहने के लिए आ गये थे। संयोग-वश मेरी मुलाक़ात इन लोगों से हो गई।

इनमें से एक साक्योंग में रहता था और इसी वजह से साक्योंग गोमछेन कहलाता भी था। तिब्बती प्रथा के अनुसार किसी व्यक्ति को उसका नाम लेकर पुकारना शिष्टाचार के विरुद्ध समझा जाता है। नौकरों के सिवा प्रत्येक व्यक्ति की कोई न कोई उपाधि होती है और लोग उसे इसी नाम से जानते भी हैं।

साक्योंग गोमछेन की बहुत सी आदतें विचित्र और उसकी अपनी थीं। किन्तु वह स्पष्ट विचारों का आदमी था। वह प्राय: श्मशानों की सैर करने जाया करता था और अपने बन्द कमरे में घण्टों बैठा मन्त्र जगाया करता था। भिक्षुओं की तरह का गेरुआ वस्त्र वह कभी नहीं पहनता था और छोटे-छोटे बाल रखने के बजाय बालों का जूड़ा सर पर बनाये रहता था। तिब्बत

में गृहस्थों के अतिरिक्त और कोइ इस प्रकार के बाल रक्खे देखा जाता है तो लोग उसे 'नालजोपा' ही समझते हैं जो रहस्यपूर्ण 'सुगम* मार्ग' का अनुसरण करके मुक्ति प्राप्त करने की चेष्टा में प्रयत्नशील रहते हैं।

नये महाराजा तुल्कु की प्रार्थना पर साक्योंग गोमछेन ने लोगों को धर्म का उपदेश देने के लिए राजधानी में एक दौरा करने का निश्चय किया। इन व्याख्यानों में से एक को देखने का अवसर मुझे भी प्राप्त हुआ था—देखने का इसलिए कि उस समय मेरी तिब्बती भाषा की जानकारी बिल्कुल नहीं के बराबर थी। वह जो कुछ कहता था उसका मतलब तो रत्ती भर भी मेरी समझ में नहीं आता था, लेकिन मैं देखती अवश्य थी कि उसकी ज़ोरदार भाषा, जोश और व्याख्यान देने के शानदार ढंग से जनता के चेहरे का रंग पल-पल पर बदलता रहता था।

इस ढंग पर धर्म का उपदेश करनेवाला साक्योंग गोमछेन के अतिरिक्त और कोइ भी बौद्ध भिक्षु मेरे देखने में नहीं आया। इसका कारण केवल यह है कि पुरानी बौद्ध-प्रणाली के अनुसार ज़ोरदार भाषा में ओजपूर्ण वक्तृता त्याज्य मानी गई है। धर्म के सूक्ष्म सिद्धान्त तो शान्त भाव से उपदेशों के आदान-प्रदान से ही बुद्धि में आ सकते हैं।

एक दिन मैंने प्रश्न किया—"परम मोक्ष (थर्प) क्या है?"

मुझे बतलाया गया—"समस्त सिद्धान्तों और कल्पना की एकमात्र उपेक्षा, भ्रम पैदा करनेवाली मस्तिष्क की समग्र चेष्टाओं की अवहेलना का ही दूसरा नाम परम मोक्ष है।"

---

* देखिए सातवाँ अध्याय।

एक और दिन, बात-बात में, उसने कहा—"मैं देखता हूँ 'सुगम मार्ग' की ओर स्पष्ट रूप से आपका झुकाव है। हमारे इस मार्ग की बारीक से बारीक बातों के समझने में आपको देरी न लगेगी। आप तिब्बत अवश्य जाइए। एक से एक बढ़कर योग्य गुरु इस मन्त्र की दीक्षा देने के लिए वहाँ आपको मिलेंगे।"

इस पर मैंने पूछा—"लेकिन मेरा तिब्बत जाना हो कैसे सकता है? विदेशी लोगों को तिब्बत देश में घुसने की मनाही जो है।"

उसने बिना एक क्षण रुके हुए कहा—"तिब्बत में घुसने का रास्ता कई तरफ़ से है। सभी विद्वान् लामा कुछ ल्हासा और शिगाञ्ज़े में आकर इकट्ठे थोड़े ही हो गये हैं। पूर्वी तिब्बत में तो बल्कि और कुशल शिक्षक मिल सकते हैं।"

चीन देश की ओर से तिब्बत में घुसने का विचार मुझे कभी सूझा ही न था और न गोमछेन का इशारा ही मेरी समझ में आया। कदाचित् ऐसा अभी विधाता को मञ्जूर नहीं था।

दूसरा गोमछेन दालिंग गोमछेन भी साक्योंग गोमछेन की भाँति जहाँ से आया था, उसी जगह के नाम से पुकारा जाता था। वह स्वभाव का कुछ घमण्डी था और बातचीत बड़ी ऐंठ के साथ करता था।

तिब्बत में बहुत कम लोग ऐसे मिलेंगे जो शुद्ध शाकाहारी हों। दालिंग गोमछेन स्वयं मांस-भोजी था। बातचीत के सिलसिले में एक बार मैंने उससे अपनी शंका प्रकट की कि बुद्ध भगवान् ने तो अहिंसा को परमधर्म माना है, तब क्यों बहुत से तिब्बती बौद्ध मांस की भी भोज्य पदार्थों में गणना करते हैं।

उसने तुरन्त उत्तर दिया—"यह प्रसङ्ग तो कुछ ऐसा-वैसा है नहीं कि मैं एक-दो वाक्यों में आपके सवाल का जवाब दे सकूँ। बात यह है कि हम मनुष्यों की ही भाँति पशुओं में भी बहुत सी

"चेतनाएँ" हुआ करती हैं। लेकिन हम लोगों की ही तरह इन जीवों की चेतनाशक्तियों का एक ही परिणाम नहीं हुआ करता। जीवित प्राणी कोई एक ही वस्तु नहीं बल्कि कई भौतिक तत्त्वों का मिश्रण है। किन्तु ये सब बातें तो बड़ी गूढ़ हैं। इन्हें समझने के लिए किसी योग्य लामा के पास कुछ समय तक रहकर बाक़ायदा शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए।"

मेरे बेढङ्गे सवालों का सिलसिला प्रायः इसी युक्ति से लामा काट दिया करता था।

एक दिन शाम को सिद्क्योंग तुल्कु, दालिंग लामा और मैं बैठे-बैठे बातें कर रहे थे। करामाती साधुओं के बारे में ज़िक्र छिड़ा था। जिस श्रद्धा और अभिमान के साथ गोमछेन अपने गुरु लामा की सामर्थ्य और अद्भुत शक्तियों का बखान कर रहा था उसका प्रभाव लामा तुल्कु पर, मालूम होता है, गहरा पड़ा।

उस समय नये महाराजा का मस्तिष्क चिन्ताओं से ख़ाली नहीं था। एक बिरमा राजकुमारी के साथ उनके ब्याह की बातचीत चल रही थी। इसी के बारे में उन्हें बड़ी फ़िक्र थी।

"शोक है कि इस बड़े नालजोर्पा से मैं किसी तरह मिल नहीं सकता" उसने मुझसे अँगरेज़ी भाषा में कहा, "सचमुच, उसकी राय मेरे लिए बड़ी लाभकारी होती।"

और गोमछेन की ओर मुड़कर उसने तिब्बती में कहा--"क्या बताऊँ, तुम्हारे गुरु यहाँ हम लोगों के बीच में नहीं हैं। मैं सच कहता हूँ, मुझे ऐसे ही किसी अन्तर्यामी सिद्ध महापुरुष की बड़ी आवश्यकता थी।"

किन्तु उसका काम किस प्रकार का था, किस विषय में उसे सलाह की आवश्यकता थी, यह सब उसने कुछ नहीं प्रकट किया।

"क्या कोई बहुत ख़ास बात है ?" गोमछेन ने पूछा—"बहुत ख़ास और बहुत ज़रूरी।"

"सम्भवतः आप जो राय चाहते हैं, वह आपको मिल सकती है।"

मैंने सोचा शायद वह अपने गुरु लामा के पास कोई हरकारा या पत्रवाहक भेजेगा। मैं सफ़र के लम्बे फ़ासिले की ओर उसका ध्यान आकृष्ट करना चाहती ही थी कि एकाएक उसकी चेष्टा की ओर मेरी दृष्टि गई। उसने अपने नेत्र मूँद लिये थे। शीघ्रता के साथ उसका चेहरा पीला पड़ा जा रहा था और उसके अंग कड़े हुए जा रहे थे। मुझे भय हुआ कि शायद उसे ज्वर चढ़ आया है, लेकिन लामा तुल्कु ने मुझे उसे छेड़ने से रोका।

"चुपचाप, शान्त बैठी रहो।" उसने धीरे से कहा—"लामा लोग अक्सर बातें करते-करते समाधि की अवस्था में चले जाया करते हैं। उन्हें जगाना नहीं चाहिए। इससे उनके प्राण तक जाने का भय रहता है।"

मैं रुक गई। एकाएक लामा ने आँखें खोलीं और एकटक ऐसे देखते हुए बोला जैसे वह सो रहा हो, उसकी बोली भी बदली हुई थी,—"कोई चिन्ता मत करो; यह मसला कभी तुम्हारे सामने उठेगा ही नहीं।"

फिर उसने धीरे-धीरे अपनी आँखें बन्द कर लीं। उसकी मुखाकृति बदली और वह अपने आपे में आ गया। हमारे और सवालों को वह टाल गया और कुछ क्षण बाद ही अपने कमरे में इस तरह उठकर चला गया जैसे वह बिल्कुल थक गया हो।

लामा तुल्कु मेरी ओर मुड़े—"उसके इस उत्तर का कुछ भी मतलब नहीं निकलता है।"

लेकिन पता नहीं, दैवयोग से या कोई और वजह थी कि उसने जो कुछ कहा था, उसमें भारी मतलब निकला।

महाराजा तुल्कु का, बहुत पहले से, एक लड़की के साथ प्रेम हो गया था और उनका विवाह कहीं और होनेवाला था। उन्हें इसी बात की चिन्ता थी किन्तु कुछ ऐसा संयोग आ पड़ा कि उन्हें इसके बारे में अधिक नहीं सोचना पड़ा। ब्याह से कुछ दिन पहले ही वे इस संसार से कूच कर गये।

मैं लामा तुल्कु के साथ नैपाल-राज्य की सीमा तक गई हुई थी। उनके नौकर-चाकर इस बात को जानते थे कि महाराजा को अपने देश की 'धर्म सम्बन्धी विचित्र बातों' को मुझे दिखलाने का बड़ा शौक़ था। लौटती बार उन्होंने पता दिया कि पास के पहाड़ों में दो बड़े विचित्र संन्यासी बरसों से ऐसे छिपकर रहते थे कि कोई उनकी परछाईं तक न पाता था। समय-समय पर उनके लिए एक निश्चित गुफा में कुछ खाद्य-सामग्री रख दी जाती थी और वे उसे रात को आकर उठा ले जाते थे। पर वे कहाँ रहते थे, क्या करते थे, इसका न किसी को पता था और न किसी ने पता लगाने की कोशिश ही की थी।

महाराजा ने आज्ञा दी कि जङ्गल को चारों ओर से घेर लिया जाय और इन दोनों विचित्र जीवों को पकड़कर उनके पास लाया जाय। हाँ, इस बात का ध्यान अवश्य रक्खा जाय कि उन्हें किसी प्रकार की हानि न पहुँचने पावे।

बड़ी कठिनता से दोनों संन्यासी पकड़कर लाये गये। मुझे फिर ऐसे अद्भुत प्राणी देखने को नहीं मिले। दो के दोनों देखने में बड़े ही गन्दे लगते थे। उनके शरीर पर थोड़े से फटे कपड़े थे। उनके चेहरे लम्बे-लम्बे झबरे बालों से ढके हुए थे और उनके भीतर से उनकी बड़ी-बड़ी आँखें बिज्जू की सी चमक रही

थीं। वे अपने चारों ओर ऐसे सहमे हुए देखते थे जैसे दो जङ्गली जानवर जङ्गल से मँगवाकर पिंजड़े में बन्द कर दिये गये हों।

लामा तुल्कु ने दो बड़े-बड़े झाबे मँगवाये और उन्हें चाय, मक्खन, जौ के आटे और चावल आदि वस्तुओं से भरवा दिया। उसने संन्यासियों को बतलाया कि उसका इरादा यह सब का सब उन्हें दे देने का था। लेकिन फिर भी वे दोनों कुछ न बोले।

गाँव के लोगों ने बतलाया कि जब से ये यहाँ टिके हैं, तभी से शायद इन्होंने मौन रहने की प्रतिज्ञा कर रक्खी है।

महाराजा फिर भी महाराजा थे और अपने देश के स्वामी। उन्होंने कहा कि तब कम से कम ये हमारे सामने झुककर सलाम ही करें।

लेकिन वे दोनों संन्यासी बड़े हठीले साबित हुए। मैंने देखा, बात बिगड़ा चाहती है और बेचारों को बड़ी मुसीबत का सामना करना पड़ेगा। मैंने महाराजा से प्रार्थना की कि इन दोनों को छोड़ दिया जाय।

पहले तो लामा तुल्कु राज़ी न हुआ। पर मेरे आग्रह करने पर उसने अन्त में आज्ञा दी—"दरवाजे खोलकर इन जङ्गली जानवरों को बाहर निकाल दो।"

जैसे ही संन्यासियों ने देखा कि भागने का मौक़ा है, वे उन झाबों पर टूट पड़े। एक ने शीघ्रता के साथ अपनी गुदड़ी में से न जाने क्या वस्तु निकालकर उसे मेरे बालों में खोंस दिया और तब वे दोनों खरहों की तरह भाग गये।

मुझे अपने बालों में एक छोटी सी तावीज़ मिली जिसे मैंने और लोगों को भी दिखलाया। शायद सीधा-सादा संन्यासी समझ गया था कि मैंने उसके और उसके साथी के छुटकारे के लिए सिफ़ा-

ग्शि की थी। और अपनी कृतज्ञता प्रकट करने के लिए यह उपहार वह मुझे भेंट दे गया था।

सिद्क्यांग तुल्कु बराबर मेरे पहाड़ों पर चढ़ने के शौक़ की हँसी उड़ाया करता था। किनचिनचिंगा की चोटी के नीचे हम कुछ दिन के लिए रुके, फिर महाराजा ने अपने साथियों के साथ गङ्गटोक लौट जाने का विचार किया। मेरा उसका साथ छूट गया। मुझे उसकी याद अब तक आती है। मैं उसे अब भी अपने सामने देखती हूँ। इस बार वह आरब्योपन्याम के किसी 'जिन' के लिबास में नहीं, बल्कि योरपीय फ़ैशन के मुताबिक़ हैट पैंट में था।

दूर--पहाड़ी के पीछे आँखों से ओझल होने के पहले वह मेरी ओर मुड़ा और हैट हाथ में ऊंचा उठाकर वहीं से चिल्लाया, "ज्यादह समय तक बाहर न रहना। जल्दी वापस लौटना।"

इसके बाद फिर मैंने उसे कभी नहीं देखा। कुछ महीने बाद ही जब मैं लाछेन में रुकी थी, उसकी अचानक मृत्यु हो गई।

कुछ दिन पहले ही लामा लोगों ने उसकी जन्मपत्री देखी थी और बताया भी था कि अमुक माह में उसके ग्रह अच्छे नहीं थे और उसकी आयु के समाप्त होने की सम्भावना थी। इन लोगों ने कुछ जप-तप आदि के करने की भी सलाह दी थी, लेकिन लामा तुल्कु ने मना कर दिया था। इन सब बातों में उसका थोड़ा भी विश्वास नहीं था। अवश्य ही लोगों ने उसे हठीला और अधार्मिक समझा होगा।

मैं बेफ़िक्र होकर कुछ दिन तो जरूर घूमने-घामने में बिता देती, लेकिन चोर्टेन नाइमा जाने की मेरी बड़ी इच्छा हो रही थी। गङ्गटोक में ही लोगों ने मुझे बतलाया था कि "सिक्कम में आपने

जो मठ देखे हैं, उनमें कुछ नहीं है। यदि आप स्वतन्त्रतापूर्वक तिब्बत में नहीं घूम सकतीं तो कम से कम चोर्टेन नाइमा ही हो आइए। वहाँ की गुम्बा से आपको कुछ-कुछ अन्दाज़ा लग जायगा कि तिब्बती विहार किस प्रकार के होते हैं।"

तिब्बती लोगों का कहना है कि चोर्टेन नाइमा के इर्द-गिर्द कोई १८० चोर्टेन और इतने ही पहाड़ी सोते होंगे। लेकिन ये सबके सब हमारी धूल भरी आँखों से दिखलाई नहीं देते। जहाँ ये स्रोत पृथ्वी में से फूटते हैं वहीं के जल का आचमन करके किसी भी अलभ्य से अलभ्य वस्तु की इच्छा प्रकट की जाय तो वह सहज ही में प्राप्त हो सकती है।

प्राचीन किंवदन्ती के अनुसार ८वीं सदी में तिब्बत के धर्मगुरु पद्मसम्भव ने चोर्टेननाइमा के आसपास कहीं सैकड़ों हस्तलिखित पुस्तकें इसलिए छिपाकर रख दी थीं कि इनमें लिखी हुई बातें अपने समय के बहुत पहले की थीं। महागुरु ने पहले से ही जान लिया था कि आज से सैकड़ों वर्ष बाद लामा लोग इन्हें खोज निकालने और इनका असली तत्त्व समझने में समर्थ हो सकेंगे। सुनते हैं, अनेक लामा अरसे से इन्हीं ग्रन्थों की खोज में लगे हैं और इनमें से कई प्राप्त भी हुए हैं।

चोर्टेन नाइमा में मेरे देखने में सिर्फ़ चार देवदासियाँ (अनी) आईं। तिब्बत में बहुत सी विचित्र बातें देखने-सुनने में आती हैं, लेकिन इस देश की स्त्रियों की बहादुरी पर तो मुझे बहुत ही अचम्भा हुआ। बहुत कम योरपीय स्त्रियाँ इनकी भाँति सुनसान रेगिस्तानों में ४,४ या ५,५ की संख्या में या कभी-कभी अकेली ही रहने को तैयार होंगी। यहाँ की स्त्रियाँ इतनी साहसी होती हैं कि वे हिंस्र पशुओं और डाकुओं से घिरे हुए जंगलों से होकर बेखटके यात्रा करती हैं।

पतझड़ का समय आ पहुँचा, पहाड़ी रास्ते बर्फ़ से भर गये और तम्बू के भीतर रातें कटनी कठिन हो गईं। मैंने पहाड़ों को शीघ्र छोड़ दिया।

थाङ्गचू में जिस बंगले में मैं रहती थी, वह समुद्र की सतह से १२००० फ़ीट ऊँचे--तिब्बत की सीमा से १४ मील के फ़ासिले पर--एक सुन्दर निर्जन प्रदेश में जंगलों से घिरा हुआ था। मुझे यह स्थान बहुत ही पसन्द आया और कुछ दिनों के लिए गङ्गटोक या पोदाऽङ् लौटने का विचार मैंने स्थगित कर दिया।

मैं सोच ही रही थी कि जाड़ों में कहाँ रहना ठीक होगा कि पता लगा कि लाछेन का गोमछेन आजकल अपने आश्रम में ही था और अपने बँगले से सबेरे चलकर दुपहर तक आसानी से मैं वहाँ पहुँच सकती थी। मैंने तुरन्त उसके पास तक जाने का निश्चय किया। उसके समीप रहकर बहुत सी बातों का पता लगाना था और बहुत सी बातें सीखनी थीं। लेकिन अपने घोड़े को मैंने पहले से ही अलग कर दिया था और चोर्टेन नाऽमा के बाद से बराबर याक पर सफ़र कर रही थी। याक की सवारी में लगाम का काम नहीं पड़ता है। दोनों हाथ ख़ाली रहते हैं। मेरी वही आदत पड़ी थी और जब मैं बँगले के मालिक के घोड़े पर चढ़ी तो भी अक़्ल न आई। जानवर अच्छा था। जैसे ही वह अपनी जगह से तेज़ी के साथ छूटा, वैसे ही मैं धड़ाम से नीचे आ गिरी। भाग्यवश मेरे नीचे घास थी और चोट कुछ कम आई। बँगले का मालिक डरता डरता मेरे पास आया और बोला--"आप विश्वास कीजिए, इसके पहले कभी इस घोड़े ने ऐसा नहीं किया है। यह तो बहुत सीधा है। मुझे इसके ऊपर पूरा भरोसा था। परसों से मैं इसे अपने काम में ला रहा हूँ। देखिए, मैं ख़ुद आपको चढ़कर दिखाता हूँ।"

वह घोड़े के पास गया, उसे चुमकारा, उसकी पीठ थपथपाई और चढ़ने को कूदा. लेकिन उसके पैर रिकाब में नहीं पड़े। घोड़े ने उसे लात मारी और वह दन से नीचे आ गया। उसका भाग्य मुझसे भी ज्यादा खोटा था और वह चट्टान पर चारों खाने चित्त गिरा।

कुछ लोग उसके पास दौड़े और कुछ मेरे पास आये। "आप जल्दी से जल्दी गङ्गटोक लौट जाइए, गोमछेन तक जाने का विचार छोड़ दीजिए। यह सब उसी की शैतानी है। वह आपको अपने पास तक नहीं आने देना चाहता है और इसी से यह सब अशकुन हो रहे हैं।"

इसके दो दिन बाद मुझे लेने के लिए गोमछेन ने एक बढ़िया घोड़ी भेजी। उसने मेरी इस दुर्घटना का हाल किसी से सुना होगा।

मुझे चलने में कुछ देरी हो गई थी। शाम होते-होते गोधूलि के धुंधले प्रकाश में मुझे कुछ झण्डियाँ दिखाई दीं। यहीं मुझे पहुँचना था। आधी दूर आगे आकर लामा ने मेरा स्वागत किया और न जाने किन घूमघुमाववाले और पेचीदे रास्तों से होता हुआ वह मुझे अपने निवासस्थान से एक मील दूर नीचे की एक गुफा में ले गया। यहाँ मक्खन मिली हुई चाय और आग की अँगीठी तैयार मिली। मेरे और यौङ्गदेन के सोने का प्रबन्ध हो जाने पर लामा मेरे नौकरों को अपनी गुफा के पास की एक झोपड़ी में रहने के लिए लिवा ले गया।

समय पाकर मैंने लामा से प्रार्थना की कि मुझे अपना शिष्या बनाकर अपने पास रख ले लीजिए और मेरे ऊपर कृपा करके मेरे भी ज्ञानचक्षु खोलिए।

बहुत कहने-सुनने पर वह राज़ी हुआ। लेकिन उसने मुझसे वादा करा लिया कि जब तक मैं उसके पास रहूँगी, गङ्गटोक या दक्षिण की ओर जाने का विचार न करूँगी।

लामा गोमछेन के पास कुछ दिनों तक रुक जाने से मुझे बहुत ही लाभ हुआ। व्याकरण और भाषाकोष से जब-तब काम पड़ते रहने से तथा लामा के साथ बातचीत करते-करते मुझे तिब्बती भाषा की अच्छी खासी जानकारी हो गई। साथ ही साथ तिब्बत देश के बहुत से प्रसिद्ध करामाती लामाओं की जीवनियों से भी मेरा परिचय हो गया। पढ़ाते-पढ़ाते वह प्रायः रुक जाता और अपनी निज की देखी हुई घटनाओं का वर्णन करने लगता। बहुत से पहुँचे हुए लामाओं के साथ उसकी मुलाक़ात थी। उन सबकी बातचीत, जीवनी और चुटकुले वह, ज्यों का त्यों, मुझे सुनाता रहता। इस प्रकार उसके पास उसकी अपनी गुफा में बैठे-बैठे मैं धनी से धनी लामाओं के महलों में घूम आती; बड़े से बड़े सिद्ध संन्यासियों की गुफाओं की सैर कर आती; सड़क पर टहलती और रास्ते में एक से एक अनोखे आदमियों से मेरी भेंट होती थी। इस ढङ्ग पर मैं तिब्बत देश के निवासियों से, उनके रीति-रिवाज और विचारों से भली भाँति परिचित हो गई। यह जानकारी बाद को मेरे बड़े काम आई।

लेकिन इससे कोई यह न समझ ले कि मैंने यहाँ रुककर तिब्बत में और आगे बढ़ने का विचार ही बदल दिया और अगर मैं ऐसा करना चाहती भी तो मेरे लिए ऐसा करना असम्भव था। इस निर्जन रेगिस्तान में मेरे नौकर-चाकर मेरे कहने से भला कब तक रुक सकते थे। मुझे शीघ्र ही चोर्टेन नाइमा वापस आना पड़ा।

यहाँ से मैं शिगात्ज़े के लिए रवाना हुई। अब मेरे साथ में यौङ्गदेन और केवल एक भिक्षु और था। हम तीनों घोड़े पर

सवार हुए और हमारा सामान एक हट्टे कट्टे टट्टू पर लाद दिया गया।

सफ़र बहुत लम्बा नहीं था। कोई चार दिन का रास्ता सुभीते का था।

आख़िरकार एक दिन शाम को जब कि मैं सड़क के एक मोड़ पर शराब के नशे में चूर धूल में लोटते हुए एक आदमी को दया-पूर्ण दृष्टि से देख रही थी, मेरी निगाह किसी और शानदार दृश्य पर पड़ी। थोड़ी दूर पर सन्ध्या के धुँधले आलोक में आकाश में तने नीले वितान के तले ताशिल्हुन्पो की गुम्बा थी और सुन-हरी छतों को अस्ताचल को गमन करते हुए सूर्य भगवान् अपनी अन्तिम रश्मियों से सुशोभित कर रहे थे।

ताशिल्हुन्पो की सुप्रसिद्ध गुम्बा शिगात्जे से दूर नहीं है। यह बड़े लामा—जिन्हें विदेशी ताशी लामा कहते हैं—का स्थान है। तिब्बत में लोग उन्हें त्साङ् पेन्छेन रिम्पोछे (त्सांग् प्रान्त का मान-नीय विद्वान् महापुरुष) के नाम से जानते हैं। वे ओद्‌यग्मेद् अर्थात् अखण्ड तेजवान् भगवान् बुद्ध के अंश और साथ ही साथ उनके प्रिय शिष्य सुभूति के अवतार माने जाते हैं। धार्मिक दृष्टि से उनका और दलाई लामा का बराबर का ओहदा है।

दूसरे दिन मुझे ताशी लामा के सामने उपस्थित होकर उन्हें अपने देश के बारे में ख़ुलासा तौर पर बताना पड़ा। मैंने उन्हें बतलाया कि मेरी जन्मभूमि पेरिस में थी।

"कौन सा पेरिस ?—ल्हासा के दक्षिण में एक गाँव फाग्री है जिसका शुद्ध उच्चारण पैरी है—वही तो नहीं !" मैंने समझाया कि मेरा पेरिस इतना निकट नहीं था और तिब्बत की राजधानी से पश्चिम की दिशा में पड़ता था। पर इस बात पर मैं बराबर ज़ोर देती रही कि कोई भी आदमी तिब्बत से चलकर बिना समुद्र पार

किये हुए मेरे देश तक पहुँच सकता है और इसलिए मैं फिलिङ्ग नहीं थी। फिलिङ्ग के माने विदेशी हैं और विदेश यहाँ समुद्र पार के देश को कहते हैं। कहना न होगा कि मैंने इस शब्द का प्रयोग आलंकारिक भाषा में किया था।

मैं शिगात्जे के पास इतने दिनों तक रुकी रही कि मेरा नाम देश में फैल जाना स्वाभाविक तौर पर आवश्यक हो गया। मैं अब बहुत सीधे-सादे ढङ्ग पर साधुओं का सा जीवन व्यतीत करती थी। इसी से मेरी प्रसिद्धि और भी हो गई। ताशी लामा की माता तक ने मेरे पास अपना निमन्त्रण भेजा। स्वयं ताशी लामा का बर्ताव मेरे साथ बहुत ही अच्छा था। लामा-धर्म के अध्ययन में मेरा उत्साह देखकर वे बड़े प्रसन्न हुए। हर प्रकार से इस कार्य्य में मेरी सहायता करने की उन्होंने तत्परता दिखलाई। उन्होंने मुझसे पूछा भी कि मैं तिब्बत क्यों नहीं चली जाती।

तिब्बत जाने की इच्छा तो मेरी भी थी, किन्तु मैं यह भी जानती थी कि ताशी लामा चाहे कितने भी आदरणीय व्यक्ति क्यों न हों, लेकिन वे दलाई लामा के उस वर्जित देश में मेरे जाने की स्वीकृति कदापि नहीं दिलवा सकते थे।

जिन दिनों मैं शिगात्जे में थी उन्हीं दिनों वह मन्दिर भी बनकर तैयार हो रहा था जिसे ताशी लामा आगामी बुद्ध मैत्रेय के नाम पर बनवा रहे थे।

एक बड़े कमरे में विराट् रूप मैत्रेय भगवान् मूर्तिमान् थे। बीस चतुर कलाकार स्थान-स्थान पर धनवान् रमणियों के भेंट किये हुए रत्नों की जड़ाई कर रहे थे। ताशी लामा की पूजनीया जननी भी अपने समस्त बहुमूल्य रत्नों की पेटी लेकर उपस्थित थीं।

जितने दिनों मैं शिगात्ज़े में रही, बड़े आनन्द के दिन थे। तरह-तरह के लोगों से मेरी भेंट-मुलाक़ात होती थी। नित्य नये प्रकार के तमाशे देखने में आते थे।

आख़िरकार वह दिन भी आया जब कि मुझे ताशिल्हुन्पो छोड़ना पड़ा। कुछ अफ़सोस और एक ठण्ढी साँस लेकर अपनी पुस्तकों और उपहारों के साथ मैं शिगात्जे नगर से बाहर हुई।

नारथाऽङ्‌ में तिब्बत देश का सबसे बड़ा छापाख़ाना था। इसे भी मैंने देखा। इसी बीच में एक ख़ास घटना घटी।

गङ्गटोक में जो अँगरेज़ रेज़ीडेंट रहता था उसने पहले ही एक पत्र मुझे इस आशय का भेजा था कि मैं तिब्बत देश की सीमा जल्दी से जल्दी छोड़ दूँ। इसी आशय का दूसरा पत्र जब मेरे पास पहुँचा तो मैं पहले से ही तिब्बत छोड़कर सुदूर पूर्व के लिए हिन्दुस्तान को रवाना हो चुकी थी।

तीसरा अध्याय

तिब्बत की एक प्रख्यात गुम्बा

एक बार फिर हिमालय को पार करके मैं हिन्दुस्तान के रास्ते पर आ खड़ी हुई।

इस विचित्र लुभावने देश में कुछ दिन तक ऐसा सुखमय जीवन व्यतीत कर लेने के बाद फिर इसे छोड़ते हुए दुःख हुआ। तिब्बत का यह प्रवेशद्वार बहुत रहस्यमय ज़रूर रहा, लेकिन मैं जानती थी कि कितनी जानने योग्य बातें छूटी जा रही थीं, कितनी देखने लायक चीज़ें देखने को नहीं मिलीं।...लेकिन मुझे 'जादू का देश' छोड़ना ही पड़ा। मैं ब्रह्मा गई। वहाँ सागेन की पहाड़ियों में कुछ दिन तक कामताङ् बौद्धों के साथ बनी रही। फिर मैं जापान गई और वहाँ ज़ेन मतावलम्बियों के तो फो कू-जी मठ के शान्ति-पूर्ण वातावरण में कुछ दिनों के लिए शान्ति मिली।

इसके बाद कोरिया गई। वहाँ घने जंगलों में छिपी हुई पानया-अन की गुम्बा ने मेरा स्वागत किया।

फिर मैं पेकिङ्ग पहुँची। पेलिंग-स्से में कुछ दिन बीते। यह विहार कन्फ्यूशियस के शानदार मन्दिर के पास ही है। यहाँ से फिर तिब्बत ने मुझे अपनी ओर खींचा।

बरसों से मैं दूर देश में टिकी हुई कुम्बम की गुम्बा का स्वप्न देखती रही थी। मुझे तो कभी आशा नहीं थी कि वहाँ पहुँच सकूँगी। पर फिर भी यात्रा आरम्भ कर दी। मुझे तिब्बत क

देश में पैर रखने के लिए चीन देश की सारी उत्तरी-पश्चिमी सीमा तय करनी पड़ी।

मैंने एक काफ़िले का साथ पकड़ा, जिसमें अपने-अपने सेवकों के साथ-साथ दो धनी लामाओं के अतिरिक्त सुदूर कांसू प्रान्त का एक सौदागर और कुछ भिक्षु और साधारण गृहस्थ आदि थे। ये लोग सब के सब आम्दो की ओर जा रहे थे।

यात्रा बड़ी मज़ेदार रही। अपने मनोरञ्जन के लिए सफ़र की घटनाओं और साथियों के विचित्र स्वभाव से मुझे काफ़ी मसाला मिला।

हम लोग दो-एक दिन के लिए एक सराय में ठहर गये थे। लोगों को पता चला कि हमारे काफ़िले में कुछ व्यापारी भी थे। ज़रूरी चीज़ों का मोल लेने के लिए कई आदमी बाहर से सराय के भीतर आये।

लेन-देन के सिलसिले में बड़ी देर तक ठकठक होती रही। किसी बात पर सौदागरों के सरदार से और एक आदमी से कुछ चल गई। सरदार बड़ा बिगड़े-दिल मालूम पड़ता था और वह आदमी देखने में तो बड़ा सीधा सा लगता था लेकिन झगड़ालू एक नम्बर का था। दोनों अपनी-अपनी बात पर अड़ गये और हाथापाई तक नौबत आ पहुँची।

सरदार एक बड़ा डीलडौल वाला नौजवान था। उसके सामने वह दूसरा आदमी केवल बौना सा लगता था।

सराय के मालिक ने देखा, बात बढ़ती जाती है। उसने विवश होकर पास ही में रहनेवाले कुछ सिपाहियों को बुला भेजा। उधर से सरदार के लड़ाकू साथी और नौकर भी बराबरी में आ गये। तब नहीं बना था तो अब बना। जल्दी ही सरायवाले को अपनी ग़लती मालूम हो गई। बेचारा दौड़ा-दौड़ा आकर

मेरे पैरों में गिर पड़ा और मुझसे बीचबचाव करने के लिए प्रार्थना की।

मैंने दोनों दलों को समझा-बुझाकर किसी तरह शान्त किया। झगड़ा खत्म हुआ। साथ ही साथ इस बात का भी पता चल गया कि कितनी जल्दी ये लोग मरने-मारने पर तुल जाते हैं।

दूसरे दिन मैंने सराय के दरवाज़े पर देखा, कई डाकुओं के ताज़े कटे हुए सर लटक रहे थे। डाकुओं की इस देश में कमी नहीं है।

जिस सड़क से हमें जाना था उस पर लड़ती हुई सेनाओं का अधिकार था। मैंने सोचा शियान्-फ़ू की सीधी सड़क पकड़ने के बजाय उस तरफ़ से कई कोस की दूरी पर हटकर बसे हुए टङ्गशाऊ नगर से जाना उचित होगा।

जिस रोज़ मैं टङ्गशाऊ पहुँची, उसके दूसरे ही दिन नगर को शत्रुओं ने घेर लिया। मैंने अपनी आँखों से सैनिकों को सीढ़ी लगा-लगाकर शहरपनाह की दीवालों पर चढ़ते देखा, जिनके ऊपर बड़े-बड़े पत्थर नगरनिवासी ऊपर से गिरा रहे थे। मुझे ऐसा लगा जैसे मैं पुरानी तस्वीरों में दिखलाये गये शहर के घेरों और लड़ती हुई फ़ौजों को देख रही थी।

शेन्शी के गवर्नर ने मुझे अपने यहाँ चाय के लिए बुलाया। मैं गई भी। इस चाय-पार्टी की याद मुझे सदैव बनी रहेगी। पीठ से बन्दूकें बाँधे हुए और कारतूसों से लैस वीर योद्धा किसी क्षण हो सकनेवाले हमले के लिए तैयार, चाय-पानी का प्रबन्ध कर रहे थे। उनके चेहरों पर आत्मविश्वास था और होठों पर हँसी। बड़े इतमीनान के साथ सभी लोग अपने-अपने काम में लगे हुए थे। गवर्नर और अन्य बातचीत करनेवाले भद्र पुरुष बड़े शिष्टाचार और आदर के साथ अपने अतिथियों से हँस-हँसकर बातें कर रहे

थे। ये लोग कितने भले थे। चीनी लोग कैसे बहादुर, शिष्ट और सभ्य होते हैं। मैंने देखा और समझा कि हर एक देश में और प्रत्येक जाति में अच्छे और बुरे लोग होते हैं।

अन्ततः मैं किसी तरह से इस आपत्ति-पूर्ण प्रदेश से बाहर हुई। एक दिन वह भी आया, जब मैंने अपने को सही-सलामत आम्दो में पाया। मैंने परमात्मा को धन्यवाद दिया। कमबम का विहार......और एक बार फिर मैंने अपने को तिब्बती वातावरण से घिरा हुआ पाया।

—बुद्धदेव को नमस्कार है।

देवों की भाषा और सर्पों की भाषा में,

दनुजों की भाषा में, मनुजों की भाषा में,

और संसार की समस्त भाषाओं में धर्म्म का प्रचार हो।

मेरे सामने कमबम का विहार था, जिसके बड़े कमरे की छत के ऊपर छोटे-छोटे लड़के खड़े हुए कुछ मन्त्रों का पाठ कर रहे थे। एकाएक उन सबों ने एक साथ अपने अपने शंखों को मुँह से लगाकर फूँकना आरम्भ किया। थोड़ी ही देर के बाद पास की सड़कों में बहुत से लोगों के पैरों की आवाज़ सुनाई पड़ी। जल्दी से अपने-अपने जूते निकालकर ये लोग विहार के भीतर घुस गये। सबेरे की पूजा-अभ्यर्थना के लिए तैयारी हो रही थी। बड़ी गुम्बाओं में इकट्ठे हुए लामाओं की संख्या सैकड़ों तक पहुँचती है।

ऊँची छत से, लम्बे खम्भों और प्रवेश-द्वार पर बहुत सी तसवीरें बुद्धदेव और बोधिसत्त्वों की लटक रही थीं। और भी कई देवी-देवताओं के चित्र यत्र-तत्र दिखलाई पड़ रहे थे।

कमरे के भीतर भूमि पर स्थापित पिछले बड़े लामाओं की मनोहर मूर्त्तियाँ और सोने-चाँदी के डिब्बे, जिनमें उनकी राख सुरक्षित रक्खी हुई थी, मक्खन के दियों के सामने चमक रही थीं।

सारा वातावरण पूर्ण शान्ति और धार्मिक पूत-भावनाओं से चित्त को पूरित कर रहा था। इन लामाओं के चरित्र के अधूरेपन के विषय में कोई कैसे भी विचार भले ही बना ले, लेकिन इसमें सन्देह नहीं कि एकत्र हुई सारी सभा का प्रभाव हृदय पर बड़ा गहरा पड़ता था।

अब सब लोग अपने अपने स्थान पर चुपचाप पल्थी मारकर बैठ गये। बड़े लामा और उच्च पदाधिकारी अपने सिंहासनों पर शोभित हुए। सिंहासनों की ऊँचाई उनके ओहदे के अनुसार बड़ी छोटी थी। छोटे धार्मिक लामा लम्बी-लम्बी बेञ्चों पर, जो ज़मीन से थोड़ी ही ऊँची थीं, बैठे। गम्भीर और धीमे स्वर में धीरे-धीरे मन्त्र-पाठ प्रारम्भ हुआ। घण्टे, ग्यालिङ् और रैगदोङ् छोटे-छोटे और बड़े ढोल और दमामे भी साथ-साथ बजते जाते थे।

साधारण चेलों की मण्डली बेञ्चों के एकदम पीछे दरवाज़े के पास बैठी हुई थी। ये लोग सबसे अधिक चुपचाप थे। मजाल क्या कि किसी की साँस ज़ोर से निकल जाय। वे भली भाँति जानते थे कि सदा सावधान रहनेवाला चोस्तिम्पा* फ़ौरन बात करनेवालों या थोड़ा भी चकबक करनेवालों को फ़ौरन ताड़ जाता है। उसके और उसके ऊँचे आसन के पास लटकते हुए कोड़े और छड़ियों के भय के मारे उनकी थोड़ी भी कानाफूसी करने की हिम्मत न होती थी।

इस तरह का दण्ड छोटे-छोटे बच्चों के लिए निर्धारित नहीं है। बड़े और समझदार मूर्खों को ही केवल गुम्बा के चोस्तिम्पा का आतङ्क हर क्षण बना रहता है।

---

* प्रत्येक विहार में एक चोस्तिम्पा होता है जिसका कर्त्तव्य यह होता है कि पूजा के समय अनुचित व्यवहार करनेवालों को उचित दण्ड देकर शान्ति रक्खे।

बड़ी देर तक पूजन-आराधन होता रहा। इसके बाद सबको गान का चाय दी गई। तिब्बती लोग गरम-गरम चाय में मक्खन और नमक डालकर पीते हैं। इसे वे बहुत पसन्द करते हैं।

तिब्बत की प्रथा के अनुसार हर एक जन अपने व्यवहार के लिए अपना प्याला अलग रखता है। किसी को विहार के भीतर खूबसूरत चीनी मिट्टी या चाँदी के बढ़िया प्यालों को लाने की आज्ञा नहीं है। सब प्याले लकड़ी के बने हुए होते हैं—सादे सीधे और बग़ैर किसी नक़्क़ाशी के।

बड़ी-बड़ी धन-सम्पन्न गुम्बाओं में चाय के साथ-साथ मक्खन का व्यवहार होता है। भिक्षु लोग भोज में शरीक होने के लिए आते हैं तो अपने साथ एक-एक छोटा सा पात्र लाना नहीं भूलते। इसमें वे चाय के ऊपर उतराये हुए मक्खन को उतार लेते हैं। इसे वे लोगों के हाथ बेंच देते हैं। फिर यही मक्खन या तो चाय में दुबारा डालने के काम आता है या इससे लोग अपने घर के दिये जलाते हैं।

बड़ी-बड़ी गुम्बाओं में धनी यात्रियों या वहीं के बड़े लामाओं की ओर से ऐसे कई भोज दिये जाते हैं, जिनमें भिक्षुगणों को खाने के लिए तरह-तरह के माल और कभी-कभी दक्षिणा में भारी रक़म भी प्राप्त होती है।

तिब्बत में बौद्ध धर्म का जो प्रचलित रूप देखने में आता है उसमें और जैसा लङ्का, चीन, जापान आदि देशों में है—उसमें बहुत अन्तर है। यहाँ के विहार भी अपने ढंग के अनूठे ही होते हैं। तिब्बती भाषा में विहार को 'गुम्बा' कहते हैं जिसका अर्थ होता है, "निर्जन स्थान में कोई घर"। यह नाम बहुत कुछ ठीक भी है।

मानव-बुद्धि से परे अपर लोक की सफलता—पूर्ण विजय, आत्म-मीमांसा, ब्रह्मज्ञान और प्राकृतिक भूत-तत्त्वों पर अधिकार—

इन उच्च आदर्शों को लक्ष्य में रखकर ये गगनचुम्बी इमारतें बर्फ़ से घिरे हुए विशाल नगरों में उठाई गई थीं। पर आजकल तो सिद्ध और करामाती लामा इनके बाहर ही देखने में आते हैं। विहारों का वातावरण कुछ पहले जैसा न रह जाने के कारण वे और निर्जन, आदमियों की पहुँच से दूर, पहाड़ की कन्दराओं को अपने लिए अधिक उपयुक्त समझते हैं। फिर भी इन संन्यासियों का आध्यात्मिक जीवन प्रायः इन्हीं विहारों से आरम्भ होता है।

जिन लड़कों के माता-पिता उन्हें मठ-जीवन के लिए चुन लेते हैं वे ८ या ९ साल के हो जाने पर विहारसंघ में प्रवेश करते हैं। अपने कुटुम्ब के किसी बड़े भिक्षु के हाथ में या किसी सम्बन्धी के न मिलने पर जान-पहचान के एक भले आदमी की निगरानी में वे सौंप दिये जाते हैं। प्रायः यह पहला अध्यापक उनका उम्र भर का गुरु होता है।

प्रतिदिन सबेरे लड़के आँख मींचते हुए उठते हैं और अपने से बड़ों की देखादेखी दैनिक जीवन में लग जाते हैं। जिस ढंग से यहाँ दिन का आरम्भ होता है उसी से आभास मिल जाता है कि इन गुम्बाओं में रहनेवालों का जीवन किस प्रकार का होता होगा।

जिन लड़कों के माँ-बाप पैसेवाले होते हैं उनके घर से तरह-तरह की वस्तुएँ आती रहती हैं। प्रायः मक्खन, सूखे मेवे, चीनी, राब और रोटियाँ आदि आती हैं। जिन भाग्यवानों को ये चीज़ें सरलता से प्राप्त होती रहती हैं उनका दैनिक जीवन एक प्रकार से बिल्कुल ही बदल जाता है; क्योंकि इनकी सहायता से वे ग़रीब लड़कों से जिस प्रकार की चाहें सेवा ले सकते हैं।

बड़े होने पर इन विद्यार्थियों की इच्छा यदि और पढ़ने की हुई और परिस्थितियाँ प्रतिकूल न हुईं तो वे विहारसंघ की ओर से बने हुए चार विद्यालयों में से किसी एक में नाम लिखा लेते हैं।

छोटी-मोटी गुम्बाओं से विद्याध्ययन आरम्भ करनेवाले चेलों को ऐसी सुविधाएँ सुलभ नहीं रहतीं; क्योंकि इनकी ओर से इस प्रकार के कोई कालेज नहीं बने होते। मठ में रह चुकने के बाद वे जब जहाँ चाहें, चले जा सकते हैं।

भिन्न-भिन्न विद्यालयों में भिन्न-भिन्न विषय पढ़ाये जाते हैं—

(१) त्सेन कालेज में दर्शन-शास्त्र और मनोविज्ञान।

(२) ग्यि-उद् कालेज में तंत्र-शास्त्र (जादूगरी) की शिक्षा दी जाती है।

(३) मेन कालेज में चीनी और भारतीय पद्धति के अनुसार वैद्यक की पढ़ाई होती है।

(४) दोन कालेज में धर्म-शास्त्र के अध्यापक मिलते हैं।

व्याकरण, गणित और अन्य विविध विषय इन विद्यापीठों से बाहर कुछ अध्यापक अपने घर पर ही पढ़ाते हैं।

नियत तिथियों पर फिलासफी के छात्रों में परस्पर वाद-विवाद हुआ करता है। इसके लिए चारों ओर दीवालों से घिरे हुए ख़ास तौर के बाग़ीचे बने हुए होते हैं। इन विवादों में अपनी बात कुछ कम ही कही जाती है। प्राय: धर्मग्रन्थों के बड़े लम्बे-लम्बे उद्धरण ही दुहराये जाते हैं। लेकिन उनके कहने का ढङ्ग ऐसा होता है कि मालूम पड़ता है मानों बड़ी गरमागरमी के साथ सवाल-जवाब चल रहे हैं। प्रश्न करते समय हाथ पर हाथ मारने की, पृथ्वी पर पैर पटकने की और बाहों के चारों ओर माला घुमाने की विचित्र प्रणाली होती है। उत्तर देने के समय भी एक ख़ास ढङ्ग से कूद-फाँद मचाने का तरीक़ा होता है। फलस्वरूप देखनेवाला यही समझता है कि वाद-विवाद बड़े ज़ोरों पर चल रहा है।

इन शास्त्रार्थों के बारे में एक बात और बता देने के योग्य है। विवाद हो चुकने पर सभा भर में विजेता विजित के कन्धों पर बैठाकर चारों ओर घुमाया जाता है।

ग्यि-उद् कालेज के छात्रों का देश में बड़ा मान रहता है। ये ग्-युद्पा कहलाते हैं। लोगों का विश्वास है कि बड़े-बड़े कुपित देवताओं के क्रोध को शान्त करने में ये ही समर्थ हो सकते हैं और विहार की रक्षा का भार भी इन्हीं पर रहता है; क्योंकि भूत-प्रेत-बाधा का निवारण इनके सिवा और कोई कर ही नहीं सकता।

इन विहारों में दो तरह के भिक्षु होते हैं—गेलुग्स-पा अर्थात् पीली टोपीवाले—जिन्हें विवाह करने की मनाही है और लाल टोपीवाले। इस सम्प्रदाय के भिक्षुओं को, जिन्हें गेलोऽङ् कहते हैं, विवाहित जीवन व्यतीत करने की आज्ञा है। लेकिन ये भी अपने बाल-बच्चों को अपने साथ नहीं रख सकते। विहारों से बाहर उनके लिए अलग घर बने रहते हैं। लङ्का के विहारों या और किसी देश के मठों की भाँति ये तिब्बती गुम्बाएँ भी उन लोगों के रहने के लिए बनती हैं जो आध्यात्मिक तत्त्वों की खोज में लगे रहते हैं। अपने लक्ष्य तक पहुँचने के लिए हर एक भिक्षु चाहे जिस मार्ग का सहारा ले सकता है। उसके लिए कोई एक निर्दिष्ट पथ नहीं निर्धारित रहता।

अपनी-अपनी कोठरियों में अलग-अलग भिक्षुगण मन्त्र-तन्त्र जगाते हैं और जिस ढङ्ग से चाहते हैं, ज्ञान-मार्ग को ढूँढ़ते हैं। इस विषय में उनके गुरु के अतिरिक्त और किसी को कुछ बोलने का अधिकार नहीं होता। और तो और, कोई उसके व्यक्तिगत विचारों के विषय में भी पूछताछ नहीं कर सकता। वह चाहे जिस सिद्धान्त का पक्षपाती हो—एकदम नास्तिक ही क्यों न हो—उसे किसी से कोई सरोकार नहीं।

प्रत्येक गुम्बा में एक बड़े कमरे के अतिरिक्त कई एक ल्हा-खङ् यानी देवस्थान होते हैं। इन सबकी स्थापना किसी न किसी देवता या ऐतिहासिक अथवा पौराणिक बोधिसत्त्वों के नाम पर की जाती है।

जिन्हें श्रद्धा होती है वे इन मूर्तियों के दर्शन करने आते हैं। इन देवताओं के सम्मान-स्वरूप वे अगरबत्ती या घी के दिये जलाते हैं। कभी कभी मनौतियाँ भी करते हैं, पर सदैव नहीं।

बुद्धदेव के आगे वरदान की इच्छा नहीं प्रकट की जाती, क्योंकि भगवान् सांसारिक इच्छाओं की सीमा के बाहर चले गये हैं। हाँ, लोग शपथ ले सकते हैं और अपना विश्वास प्रकट करते हैं। जैसे "इस जीवन में या दूसरे जीवन में बहुत सा धन-धान्य दान में दूँगा और अनेक जीवों का कल्याण मुझसे होगा"; या "बुद्ध भगवान् के सिद्धान्तों का तात्पर्य मेरी बुद्धि में आ रहा है। मैं निरन्तर अपना कर्त्तव्य-कर्म करता जा रहा हूँ।" आदि आदि।

पहले के बौद्ध भिक्षुओं की भाँति ये लोग दरिद्रता का स्वागत नहीं करते। मेरा तो विचार यह है कि जो लामा यहाँ अपनी प्रसन्नता से ग़रीब बनकर रहना चाहे उसका कोई विशेष आदर नहीं होता। इस तरह का पागलपन सिर्फ़ संन्यासी ही करते हैं, जिनका अपना कोई घर-बार नहीं होता। हाँ, सिद्धार्थ गौतम और अन्य पुराने बड़े घरानों के युवकों की कहानियाँ, जिन्होंने थोड़ी उम्र में ही संसार से नाता तोड़कर संन्यास ग्रहण कर लिया था, बड़े चाव और श्रद्धा के साथ कही-सुनी जाती हैं। परन्तु आजकल के समय में ऐसी घटनाएँ असम्भव और किसी अन्य जगत् की मानी जाती हैं।

विहार-संघ में प्रवेश करते ही किसी को रहने के लिए मुफ़्त कोठरी नहीं दे दी जाती। प्रत्येक भिक्षु को अपने लिए स्वयं प्रबन्ध करना पड़ता है। कभी-कभी उसे अपने ही सम्बन्धियों

या मित्रों की कोठरी मिल जाती है और कभी-कभी धनी लामाओं को ओर से बनी हुई कोठरियाँ किराये पर लेनी पड़ती हैं। अपने पेट के लिए भी उसे कुछ न कुछ काम करना पड़ता है। कोई भण्डारी बन जाता है, कोई मुहर्रिर और कोई साईस। होनहार विद्यार्थियों, विद्वानों और बड़े-बूढ़े लामाओं को अलबत्ता कुछ उदारचित्त लामा अपने यहाँ यों ही स्थान दे देते हैं। जिसके पास विद्या होती है, उसे अपने लिए अधिक कठिनाई नहीं करनी पड़ती। विद्यार्जन करके, पौराणिक आख्यानों के चित्र बनाकर, ज्योतिष गणना या जन्मकुण्डली ही खींचकर या पूजापाठ करवाकर होशियार लोग यों ही बहुत काफ़ी धन पैदा कर लेते हैं। जिन्हें थोड़ा बहुत वैद्यक का ज्ञान होता है उनकी तो बन आती है। ऐसे लोगों की तो बड़ी पूछ रहती है। पर सबसे अधिक आमदनी जिस पेशे में होती है वह कोई दूसरा ही है। जो अपने पास से कुछ पैसा लगा सकते हैं वे व्यवसाय से बहुत कुछ पैदा कर लेते हैं। जिनके पास निजी पूँजी नहीं होती वे दूसरे व्यवसायियों के यहाँ मुनीमी या कोई और छोटी नौकरी कर लेते हैं।

एक बड़े विहार का इन्तज़ाम किसी नगर के प्रबन्ध से कम कठिन नहीं होता। इन गुम्बाओं के भीतर जो भिक्षु रहते हैं उन्हीं की संख्या हज़ारों तक पहुँचती है। इनके अतिरिक्त प्रत्येक मठ के मातहत बहुत से गाँव भी होते हैं, जिनका प्रबन्ध इन्हीं गुम्बाओं की तरफ़ से होता है। कुछ चुने हुए अफ़सर अपने मुहर्रिरों और एक प्रकार की पुलीस की सहायता से इन गाँववालों की देख-भाल करते हैं।

चुनाव के द्वारा गुम्बा का सबसे बड़ा पदाधिकारी त्सौग्स-छेन् शलङ्गो नियत किया जाता है। विहार-संघ के नियमों का जो उल्लंघन करते हैं उन्हें दण्ड देने का अधिकार भी इसे ही होता है

और यही गुम्बा में लोगों का प्रवेश करता, छुट्टी देता या किसी को बाहर निकाल सकता है। बहुत से और कर्मचारी इसके मातहत कार्य्य करते हैं। ये सभी पदाधिकारी बड़े-बड़े लबादे पहनकर और हाथ में मूँगे से जड़ी चाँदी की भारी छड़ियाँ लेकर बड़ी शान से निकलते हैं। पुलिस के ये सिपाही 'डॅबडॅब' कहे जाते हैं। हट्टे-कट्टे बदनवाले अनपढ़ उजड्ड लोग, जिन्हें बचपन में उनके माता-पिता ने भूल से गुम्बाओं में भरती करा दिया था, इस पुलिस में आ जाते हैं।

इन विचित्र सिपाहियों की बहादुरी के सबसे बड़े तमगे धूल और मैल हैं। एक सच्चा वीर कभी हाथ-मुँह धोने की ग़लती नहीं करता। अगर अक़्ल ने और ज़ोर मारा तो वह कड़ाह के नीचे जमे हुए चिकने काजल से अपने चेहरे को काला करके बिल्कुल अफ़्रीका का हबशी ही बन जाता है।

'डॅबडॅब' के शरीर पर फटे चिथड़ों के अलावा समूचे कपड़े कठिनता से देखने में आते हैं। इसकी वजह कभी-कभी ग़रीबी होती है; लेकिन अक्सर वह अपने कपड़े जान-बूझकर फाड़ डालता है। वह सोचता है कि ऐसा करने से लोग उसे देखकर और ज्यादा रोब मानेंगे। नया कपड़ा बदन पर पड़ते ही ये उसे मक्खन की चिकनाहट और धूल की मदद से अपने मन मुआफ़िक़ बना डालते हैं। इनके हाथ-मुँह पर भी मैल की तहें जमी रहती हैं।

इन अधिकारियों के अतिरिक्त गुम्बाओं में एक श्रेणी उन लोगों की अलग होती है, जिन्हें लामा तुल्कु कहते हैं। लामा धर्म में तुल्कु लोगों का एक विशेष स्थान है; क्योंकि बौद्ध धर्म की और किसी शाखा में इस प्रकार के लोगों की कोई संस्था नहीं है।

लामा तुल्कु न तो बहुत पुराने हैं और न एकदम नये। सन् १६५० के बाद से इनका नाम सुन पड़ता है।

गेलुग्स पा (पीली टोपीवालों) के पाँचवें बड़े लामा को मंगोलों ने और चीन देश के महाराज ने तिब्बत का शासक स्वीकार कर लिया। पर इस सांसारिक वैभव और ऐश्वर्य्य से लोबज़ेन्ग ग्यात्सो की परितुष्टि न हुई। उन्होंने अपने को बोधिसत्त्व छेनरेज़िग्स* का अंश घोषित किया। साथ ही साथ अपने धार्मिक गुरु को ताशिलहुन्पो का बड़ा लामा बनाकर उनके ओद्पग्मेद* का तुल्कु होने की प्रसिद्धि की।

जो और बड़ी-बड़ी गुम्बाएँ थीं उन्होंने भी शीघ्र ही अपना-अपना मान बढ़ाने के लिए अपने यहाँ किसी न किसी बड़े लामा या बोधिसत्त्व का अवतार कराना ज़रूरी समझा। इस प्रकार गुम्बाओं में तुल्कु होने की प्रथा चली।

दलाई लामा, ताशिल्हुन्पा के बड़े लामा, महिला दोर्जे फाग्मो—ये बोधिसत्त्वों के तुल्कु हैं। देवी-देवताओं, दानवों और परियों के तुल्कु (खाधोम) इनसे नीचे की श्रेणी के हैं।

'तुल्कु' का शाब्दिक अर्थ होता है जादू का बना हुआ कोई आकार। मैं पहले अध्याय में बता चुकी हूँ कि (१९१२ में) दलाई लामा से मेरी मुलाक़ात हुई थी तो उन्होंने मेरी शंकाओं का भरसक समाधान किया था और मेरे कुछ सवालों का जवाब भी एक लम्बे पत्र में लिखकर देने की कृपा की थी।

दलाई लामा के इसी लम्बे पत्र में से मैं यह अंश उद्धृत करती हूँ—

---

*छेनरेज़िग्स और ओद्पग्मेद का क्रम से संस्कृत में अवलोकितेश्वर और अमिताभ नाम है।

"बोधिसत्त्व अनेक सूक्ष्म शरीर धारण कर सकता है। मस्तिष्क को सम्पूर्ण रूप से एकाग्र करके वह एक ही समय में भिन्न स्थलों पर भिन्न तुल्प (सूक्ष्म) उपस्थित कर सकता है। वह केवल आदमी का आकार ही नहीं बल्कि पहाड़ी, वन, घर, सड़क, कुआँ, पुल—जिसका रूप चाहे ले सकता है। उसकी इस प्रकार की सृजन करने की शक्ति अपार है।"

मरते समय प्रायः लामा बतला देता है कि अमुक देश या प्रान्त में मैं फिर जन्म लूँगा। कभी-कभी वह अगले जन्म के माता-पिता का नाम, घर में दरवाज़े और दिशा का भी पता दे देता है।

क़ायदे के अनुसार इसके दो साल के बाद लोग इसकी जाँच-पड़ताल करते हैं कि मरे हुए लामा ने फिर कहाँ जन्म लिया। पता लग जाने पर लोग उस बच्चे के सामने तरह-तरह की वस्तुएँ, मालाएँ, किताबें, चाय के प्याले* आदि लाकर रख देते हैं और उनमें से अगर वह मृत लामा की चीज़ों को चुन लेता है तो उसके लामा तुल्कु होने में कोई सन्देह नहीं रह जाता, क्योंकि वह अपने पिछले जन्म की चीज़ों के पहचानने का पक्का प्रमाण दे रहा है।

कभी-कभी ऐसा होता है कि बहुत से लड़के एक साथ ही किसी लामा के तुल्कु बनने के उम्मीदवार होते हैं। यह तभी होता है जब सभी लड़कों में पहचान के कोई न कोई चिह्न होते हैं। हर एक स्वर्गीय लामा की कोई न कोई चीज़ उठा लेता है; या तब जब कि दो तीन निर्णायकों में इस विषय में मतभेद हो जाता है कि कौन असली तुल्कु है।

* हर एक तिब्बती का—चाहे वह ग़रीब हो या अमीर—अपना एक अलग प्याला होता है जिसे वह कभी दूसरे को नहीं देता।

कहना न होगा कि जब कभी किसी बड़े लामा तुल्कु या विहार के महास्थविर की जगह ख़ाली होती है तो इन झगड़ों का उठना ज़रूरी होता है। ऐसे मौक़े पर कई बड़े घराने अपने-अपने कुटुम्ब के किसी उम्मेदवार को तुल्कु बना देने की इच्छा रखते हैं।

प्रत्येक गुम्बा में बड़े लामा तुल्कु को छोड़कर और कई छोटे-छोटे तुल्कु होते हैं। कभी-कभी इनकी संख्या सैकड़ों तक पहुँचती है। ये लोग तिब्बत में और तिब्बत के बाहर मंगोलिया में बड़ी-बड़ी जायदादों के मालिक होते हैं। इनमें से छोटे से छोटे का समीपी संबंधी होना बड़े भाग्य की बात है।

इसलिए तुल्कु के रिक्त स्थान के लिए तरह-तरह के चक्र और षड्यंत्र चलते रहते हैं। और खाम या उत्तरी सीमा प्रान्त के बहादुर लोगों में इसके लिए थोड़ी बहुत धन-जन की हानि कर देना कोई बहुत बड़ी बात नहीं होती है।

अनेक बार पिछले जन्म की चमत्कारपूर्ण घटनाओं को ज्यों का त्यों बयान करके कम उम्रवाले बालक अपनी स्मरण-शक्ति का विलक्षण परिचय देते हैं। इन कहानियों में हमें तिब्बती लोगों के अन्धविश्वासों, धूर्तताओं और मूर्खताओं का बड़ा भाग मिला हुआ दिखाई देता है।

कमूबम में मैं पेग्याई लामा के बड़े मकान में रहती थी। हमारे पड़ोस में एक साधारण तुल्कु आग्नेय-त्सांग का घर था। गृह-स्वामी को मरे हुए सात साल हो गये थे और अभी तक इस बात का पता नहीं चला था कि पुराने मालिक ने दुबारा कहाँ जन्म लिया। पर मेरा अनुमान है कि गुमाश्ते को इसकी कोई विशेष चिन्ता न थी। वह कुछ बेफ़िक्र और ख़ुशहाल मालूम पड़ता था।

कहते हैं, एक बार मालगुज़ारी के प्रबन्ध के सिलसिले में गुमाश्ता एक गाँव में पहुँचा। उसे प्यास लगी थी और वह

थोड़ी देर सुस्ताने के लिए एक असामी के घर में ठहर गया। चाय तैयार होने के लिए चढ़ा दी गई और नियर्पो (गुमाश्ता) अपनी जेब से सुँघनी को डिबिया निकालकर चुटकी में ले ही रहा था कि अकस्मात् कोने में खेलते हुए एक छोटे बालक ने डिबिया पर हाथ रखकर बड़े रोब से कहा—"तुम मेरी डिबिया अपने पास क्यों रक्खे हुए हो ?"

गुमाश्ता भौंचक्का सा रह गया। सचमुच डिबिया उसकी अपनी नहीं, अग्नेयत्सांग की ही थी। उसे हड़पने का उसका अभिप्राय नहीं था, परन्तु वह उसे अपने प्रयोग में अवश्य लाता था। वह काँपने लगा।

"मेरी चीज़ तुरन्त मेरे हवाले करो।" लड़के ने और अधिक अधिकार जताते हुए कहा। डर के मारे काँपते हुए किंकर्तव्य-विमूढ़ अन्ध-विश्वासी गुमाश्ते से घुटने टेककर माफ़ी ही माँगते बन पड़ा।

इसके कुछ दिन बाद ही मैंने उस लड़के को शान के साथ एक बढ़िया काले टट्टू पर सवार होकर अपने पुराने घर में बड़े समा-रोह से आते देखा। टट्टू के आगे-आगे था ख़ुद गुमाश्ता और वह अपने हाथों में उसकी लगाम लिये हुए था।

मैंने एक और तुल्कु के इससे भी बढ़कर आश्चर्यजनक और अनूठे ढङ्ग से आन्सी से कुछ मील की दूरी पर एक छोटी सराय में अकस्मात् मिल जाने की घटना अपनी आँखों देखी।

उस हिस्से में मङ्गोलिया से तिब्बत जानेवाली सड़कें पेकिङ्ग और रूस के बीच की लम्बी सड़क से आकर मिलती हैं। इसलिए जब मैं सूर्य डूबने से कुछ पहले एक सराय में पहुँची और उसे पहले से ही मङ्गोलों के एक क़ाफ़िले के लोगों से भरा हुआ पाया तो मुझे बुरा तो बहुत लगा, लेकिन इस पर कोई अचम्भा नहीं हुआ।

ये लोग कुछ ऐसे उत्तेजित से मालूम देते थे जैसे अभी-अभी उनके बीच कोई ख़ास बात हो गई हो। लेकिन कुछ तो अपनी भलमनसाहत से और कुछ मेरे और लामा यौङ्गदेन के वैरागियों के से कपड़ों को देखकर उन्होंने हम लोगों के लिए एक कमरा ख़ाली कर दिया और हमारे जानवरों को भी अस्तबल में जगह दिला दी।

शाम होते होते हमारी जान-पहचान कुछ और बढ़ गई और मङ्गोलों ने हमें अपने साथ चाय पीने के लिए बुला भेजा। बात-चीत के सिलसिले में मालूम हुआ कि ये लोग सशाऊ होते हुए ल्हासा जाने के लिए निकले थे। लेकिन जिस काम के लिए ये लोग तिब्बत की राजधानी को जा रहे थे वह अकस्मात् उसी दिन आन्सी में पूरा हो गया और अब वे वहीं से आगे बढ़ने के बजाय वापस लौट जायँगे।

बात यह थी कि इन लोगों के विहार के तुल्कु की जगह ख़ाली हो गई थी और कोई २० साल से ऊपर हो गये थे लेकिन उसके लिए उन्हें कोई उम्मीदवार नहीं मिल सका था। बहुत कुछ कोशिश करने पर भी इन लोगों को मठ के पुराने प्रधान का पता न मिला। सब तरफ़ से हारकर अब ये लोग दलाई लामा के पास अपनी फ़रियाद लेकर जा रहे थे कि वही उन्हें इस बात का पता दें कि मठ के प्रधान ने मरकर फिर कहाँ जन्म लिया। लेकिन उनके ल्हासा तक पहुँचने की नौबत भी नहीं आई और बीच ही में लामा तुल्कु अपने आप ख़ुद उनसे आकर मिल गया था। शायद दलाई लामा को पहले से ही इन लोगों के बारे में पता चल गया था और उसने किसी तरह इस क़ाफ़िले के ल्हासा तक पहुँचने के पहले ही उनके लामा तुल्कु को उनसे मिला दिया था।

लामा तुल्कु एक सुन्दर नौजवान और लम्बे डील-डौल का आदमी था। दक्षिणी-पश्चिमी तिब्बत में अङ्गारी प्रान्त में उसका घर था और उसका नाम था 'मिग्युर'।

मिग्युर बचपन से ही कुछ चिन्तित रहता था। उसका विश्वास था कि उसे जहाँ होना चाहिए था, वह वहाँ नहीं है। अपने गाँव में और अपने सगे सम्बन्धियों के बीच में वह अपने आप को बाहरी-सा अनुभव करता था। स्वप्न में वह उन प्राकृतिक दृश्यों, बलुई रेगिस्तानों और पहाड़ों पर बनी हुई एक बड़ी गुम्बा आदि, आदि ऐसी वस्तुओं को देखता रहता था जिनका अङ्गारी में कहीं चिह्न तक नहीं था। जब वह जागता होता तब भी उसकी आँखों के सामने ऐसे ही चेतना-सम्बन्धी काल्पनिक चित्र नाचते रहते।

जब वह छोटा ही था तो अपने घर को छोड़कर भाग खड़ा हुआ। उसने कई स्थानों की धूल फाँकी, आज यहाँ कल वहाँ; पर कहीं एक जगह पर उसका मन नहीं लग सका। जो मृग-मरीचिका उसे अपने भुलावे में डाले हुए थी वह अभी दूर से ही उसे ललचा रही थी।

आज वह एरिक से चलकर उसी तरह निरुद्देश्य घूमता-घामता यहाँ तक आ पहुँचा था।

उसने सराय देखी, काफ़िले के पड़ाव को और आँगन में खड़े ऊँटों को भी देखा। एक अज्ञात प्रेरणा ने उसे सराय के भीतर पहुँचाया और उसने फाटक के भीतर घुसते ही अपने सामने खड़े एक वृद्ध लामा को देखा। और तब एकाएक बिजली की तेज़ी के साथ उसके दिमाग़ में सारी बातें घूम गईं। पुराने विचार याद हो आये। उसे ऐसा मालूम हुआ जैसे वह बूढ़ा लामा उससे कम उम्र का और उसका चेला है। वह स्वयं उसका गुरु है और उसके बाल बुढ़ापे के कारण सफ़ेद हो गये हैं। वह दोनों तिब्बत

के धार्मिक स्थानों की यात्रा करके अब पहाड़ी पर स्थित अपने पुराने विहार को वापस लौट रहा है।

उसने उस लामा को इन सब बातों की याद दिलाई। अपनी उस यात्रा, दूर की गुम्बा और बहुत सी और बातों के बारे में विस्तार-पूर्वक अनेक कहानियाँ कह सुनाईं।

शीघ्र ही वह और आवश्यक परीक्षाओं में पास उतरा और बिना किसी हिचकिचाहट या भूल के पुराने लामा की चीजें उसने पहचान लीं।

मङ्गोलों के मन में किसी प्रकार का कोई सन्देह नहीं रह गया। प्रसन्नता से उन्होंने अङ्गारी के उस यात्री को अपना प्रधान मान लिया और दूसरे ही दिन मैंने काफ़िले के ऊँटों को अपनी उसी सुस्त चाल से धीरे-धीरे गोबी के रेगिस्तानी मैदान में दूर पर जाकर अन्तरिक्ष में अदृश्य होते देखा। नया लामा तुल्कु अपने भाग्य का उपभोग करने जा रहा था।

कमूबम की गुम्बा में और कई विचित्र बातें देखने में आईं। इस स्थान का यह नाम कैसे पड़ा—इसकी भी कहानी बड़ी रोचक है।

कमूबम की गुम्बा में एक बहुत पुराना पेड़ है जिसके कारण इसका नाम और दूर दूर तक फैल गया है। इस विचित्र और विस्मय-पूर्ण वृक्ष की कथा इस प्रकार है—

आम्दो सन् १५५५ में उत्तरी-पूर्वी तिब्बत में—जहाँ आज कमूबम की विशाल गुम्बा स्थित है—(गेलुग्स-पा) पीली टोपीवाले सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक त्सौंग खापा का जन्म हुआ।

जन्म-दिवस के कुछ दिनों बाद ही लामा दबछेन कर्मा दोर्जे ने भविष्यवाणी की कि यह बालक बहुत ही होनहार होगा। उसके माता-पिता को उन लोगों ने आदेश दिया कि जिस स्थान पर बालक का जन्म हुआ है वह ख़ूब साफ़-सुथरा रक्खा जाय।

कुछ दिन बीत जाने पर उस स्थान पर एक पेड़ के अंकुर उग आये। आस-पास के लोगों में यह बात फैल गई और होते-होते दूर-दूर के लोग उसकी पूजा करने आने लगे। आज की विशाल और सुप्रख्यात कम्बम की गुम्बा का आरम्भ यहीं से होता है।

कई साल बाद जब कि त्सौंग खापा ने अपने धर्म-सुधार का काम हाथों में लिया और घर छोड़े हुए उन्हें बहुत दिन हो गये तो उनकी माता ने पत्र द्वारा उन्हें घर बुला भेजा। उस समय त्सौंग खापा मध्य तिब्बत में थे। उन्होंने अपने ध्यान में ही पता चला लिया कि उनके आम्दो जाने से किसी प्राणी का कोई विशेष लाभ न होगा। अस्तु, उन्होंने हरकारे को एक पत्र, अपनी दो तस्वीरें, ग्यालवा सेन्ज और तांत्रिक देमछोग् के कुछ चित्र देकर उल्टे पाँव वापस भेजा। इसके अतिरिक्त योगबल से उतनी दूर तिब्बत में बैठे-बैठे वहीं से इस पेड़ की पत्तियों पर उन तस्वीरों को ज्यों का त्यों अङ्कित भी कर दिया। तस्वीरें इतनी साफ़ थीं कि चतुर से चतुर चित्रकार वैसा चित्र न उतार सकता था। इन तस्वीरों के साथ और भी कई चिह्न और छ अक्षर (ओं मणि पद्मे हुँ।) वृक्ष की शाखाओं और छाल पर दिखलाई पड़े।

इस विहार का नाम इस प्रकार कम्बम की गुम्बा पड़ा। कम्बम के शाब्दिक अर्थ हैं—"एक लाख चिह्न"।

फ़्रांसीसी यात्री हक और गैबेट अपने वर्णनों में लिखते हैं कि उन्होंने पत्तियों पर 'ओं मणि पद्मे हुँ' पढ़ा था। फ़्रांस में ऐसे कुछ और योरपीय यात्रियों से भेंट हुई जिन्होंने इस बात का समर्थन किया। किन्तु मेरे देखने में तो ऐसा कोई पेड़ नहीं आया*।

---

* गोरखपुर ज़िले में तहसील देवरिया से कोई ७ मील दूर पैकोली नामक एक ग्राम है। यहाँ भी दो पेड़ ऐसे हैं जिनके कारण

इस जगह की ख्याति और बढ़ गई है। मुझे पैकौली जाने का अवसर एक बार मिला था। यहाँ पर एक विशाल मठ बना हुआ है। मठ के पास एक बड़ा तालाब है और तालाब के किनारे दो पेड़ हैं, जिनके चारों ओर सुन्दर स्वच्छ चबूतरे बने हुए हैं।

इन पेड़ों के तनों, डालों और टहनियों पर साफ़ देवनागरी की सुन्दर लिपि में 'राम' शब्द स्थान-स्थान पर लिखा हुआ है। इन वृक्षों के तनों और मोटी डालों के ऊपर से एक प्रकार का पतला छिलका समय-समय पर अलग होता रहता है, जिसके नीचे से साफ़ और नया 'राम' निकल आता है।

इन विचित्र वृक्षों के बारे में अगर कोई किंवदन्ती सुनने में न आती तो मुझे आश्चर्य ही होता। पूछने पर पता चला कि ये वृक्ष 'बोधि-वृक्ष' की शाखाएँ हैं। स्वयं शाक्य-मुनि गौतम जिस वृक्ष के तले 'बुद्धत्व' को प्राप्त हुए थे उसकी डालें और टहनियाँ काट-काटकर लोग न जाने कहाँ-कहाँ ले गये थे। कहते हैं, ये पेड़ लङ्का द्वीप से मँगाये गये थे।

चौथा अध्याय

मन्त्र-तन्त्र

तिब्बत देश की बड़ी जनसंख्या मन्त्र-तन्त्र, भूत-प्रेत, टोने-टटके आदि में पूरा विश्वास रखती है। जादूगर लोगों की तरह-तरह की क्रियाएँ होती हैं और इनमें शवों की आवश्यकता पड़ती है। कुछ लोगों का कहना है कि इन अनोखे मन्त्रों और रहस्य-पूर्ण रूपकों के पर्दे के पीछे ईश्वरीय ज्ञान से सम्बन्ध रखनेवाली विद्या छिपी हुई है। पर वस्तुत: इस प्रकार के उलटे अध्यात्मवाद का बौद्धधर्म से कोई सम्बन्ध नहीं है। लामा-धर्म के अन्तर्गत भी ये बातें नहीं आतीं, यद्यपि चुपके-चुपके कई लामा इन क्रियाओं की सिद्धि के लिए उद्योग करते रहते हैं। इस तरह के विचित्र धर्म का मूल रूप भारतवर्ष के हिन्दू तांत्रिकों और पुरानी येन-धर्म-शाखा के सिद्धान्तों में अलबत्ता मिलता है।

नीचे की कहानी चेटकू में मेरे सुनने में आई। मिनियाग्यार ल्हाखङ् के महन्त चोग्स् त्सांग के बारे में यह प्रसिद्धि है कि उसने कुछ भविष्यवाणियाँ की थीं, जो ठीक समय पर तिब्बत, चीन और संसार के और कोनों में ठीक उतरेंगी। उसकी शक्तियाँ अद्भुत थीं और आदतें अनोखी। उसकी बेढङ्गी बातों का मतलब सबकी समझ में नहीं आता था।

एक दिन शाम को एकाएक उसने अपने एक त्रापा को बुलाया।

"दो घोड़ों को तैयार करो। हमें अभी चलना है", उसने आज्ञा दी।

त्रापा ने कहा, "अँधेरा बढ़ गया है और देरी हो गई है। कल सबेरे तड़के ही चल देंगे।"

"जवाब मत दो। जल्दी आओ और चलो", चोग्स त्सांग ने कह दिया।

घोड़े आये और दोनों अँधेरे में चले। एक नदी के पास पहुँच कर वे घोड़े से उतर पड़े। चोग्स त्साङ्ग नदी के किनारे-किनारे आगे-आगे चला और पीछे पीछे उसका चेला।

यद्यपि आकाश में बिलकुल अँधेरा छाया हुआ था, परन्तु पानी में एक जगह "सूर्य की किरणों का प्रकाश" पड़ रहा था। उस प्रकाश में नदी के प्रवाह के विरुद्ध—उल्टी बहती हुई एक लाश दिखलाई पड़ी। लाश बाहर निकाली गई और चोग्स त्सांग ने कहा—"अपना चाकू निकालो। इसमें से एक टुकड़ा मांस काटो और उसे खा जाओ। मेरा एक ग्य-गर् पा (भारतवासी) दोस्त आज ही के दिन यहाँ इसी प्रकार भोजन भेजता है।"

उसने स्वयं एक टुकड़ा काटा और उसे खाने लगा। त्रापा डर से काँप उठा। उसने भी अपने गुरु का अनुकरण करना चाहा लेकिन मांस के टुकड़े को मुँह में रखने की उसकी हिम्मत नहीं हुई। उसने उसे अपने अम्बग (लबादे के भीतर) में छिपा लिया।

सबेरा होते-होते दोनों मठ को वापस लौटे। लामा ने त्रापा से कहा—

"मेरी इच्छा थी कि तुम भी कुछ प्रसाद पा जाते; लेकिन तुम उसके योग्य नहीं हो। तभी तुमने अपना हिस्सा मुँह में रखने के बजाय चुपके से कपड़ों में छिपा लिया है।"

यह सुनकर त्रापा को अपनी भूल पर बड़ा पछतावा हुआ। उसने अपने को कोसते हुए मांस के टुकड़े के लिए अम्बग में हाथ डाला। पर वह वहाँ नहीं था।

बातें मालूम हुईं। उसका कहना था कि उसने स्वयं इस क्रिया का अभ्यास किया था।

इस क्रिया का साधक एक अँधेरे कमरे में लाश के साथ बन्द हो जाता है। उसमें आत्मा बुलाने के लिए वह उस पर सीधा लेट जाता है। उसका मुँह लाश के मुँह के ठीक ऊपर होता है और वह लाश को, दोनों हाथों में कसकर, पकड़े रहता है। और सब विचारों को एकदम दूर करके वह एकाग्र चित्त से मन्त्र का जाप शुरू करता है।

कुछ देर के बाद लाश हिलने लगती है और उठकर खड़ी हो जाती है तथा छुटकारा पाने की चेष्टा करती है। साधक उसे कसकर पकड़े रहता है। लाश अब पूरी कोशिश करके छूटना चाहती है; साधक को भी अपना पूरा ज़ोर लगाना पड़ता है। वह लाश के ऊपर अपने ओठों को रक्खे हुए बराबर चुपचाप मन्त्र को दुहराता रहता है और लाश उसके चंगुल से छूटने के लिए कमरे की छत तक की ऊँचाई तक कूद-फाँद मचाती है।

अन्त में लाश की जीभ उसके मुँह के बाहर निकल पड़ती है। यही ठीक अवसर होता है। साधक अपने दाँतों से उस जीभ को पकड़कर काट लेता है। लाश तुरन्त नीचे गिर पड़ती है। इस जीभ को सुखाकर पास रख लेते हैं और जिसके पास यह रहती है उसकी चमत्कार करने की शक्तियाँ कई गुनी बढ़ जाती हैं।

लेकिन इस नाचती हुई लाश को वश में रखना बड़ा कठिन काम है। इस काम में थोड़ा भी चूकने पर मृत्यु अवश्यम्भावी है।

मुझे जिस नालजोर्पा ने ये सब बातें बतलाईं उसने यह भी कहा कि उसके पास एक ऐसी जीभ थी। मैंने उसे देखने को माँगा। जो काली-काली चीज़ मुझे दिखाई गई वह जीभ हो सकती थी

पर इस बात का कोई पक्का प्रमाण नहीं था कि यह जीभ वैसी ही लाश की थी।

जो भी हो, तिब्बतियों का विश्वास है कि रोलैङ् की क्रिया में सचमुच ये सब बातें होती हैं।

इनका तो यह भी कहना है कि मन्त्र के बल से जगाये जाने के अलावा लाश अपने आप उठकर खड़ी हो सकती है और जीवित प्राणियों को हानि पहुँचा सकती है। यही कारण है कि किसी के मरने के बाद उसकी लाश की देख-रेख करने के लिए कुछ लोग नियत कर दिये जाते हैं और वे बराबर मन्त्रों का जाप करते रहते हैं।

शेपोगों के एक त्रापा ने मुझे निम्नलिखित घटना सुनाई थी—"लड़कपन में ही उसे एक गुम्बा में चेले की हैसियत से रहना पड़ा था। एक बार वह अपने यहाँ के तीन लामाओं के साथ एक मरे हुए आदमी के घर गया। लामा लोग लाश के हटाने के समय के आवश्यक संस्कारों के लिए बुलाये गये थे। कुछ रात बीत जाने पर कमरे के एक कोने में तीनों लामा सो गये। उसी कमरे के दूसरे कोने में लाश कफ़न में यत्न-पूर्वक बाँधकर रख दी गई थी।

"मन्त्रों का बराबर पाठ करते रहने का काम मुझे सौंपा गया था। आधी रात होते-होते मुझे नींद लगने लगी और थोड़ी देर के लिए मेरी आँखें झँप गईं। एक हल्की आवाज़ से चौंककर मैं सजग हो गया। एक काली बिल्ली लाश के पास से होकर निकली और कमरे के बाहर चली गई। मेरे कानों को ऐसा लगा जैसे कहीं कोई कपड़ा चीरा जा रहा हो। एकाएक मैंने लाश को हिलते हुए देखा। कफ़न को फाड़कर उसमें से एक हाथ निकला और सोते हुए उन आदमियों की ओर बढ़ा......। डर के मारे मैं सूख गया और एक छलाँग में कूदकर कमरे से बाहर हो गया।

सबेरे तीनों लामा मरे पाये गये और लाश का कहीं पता न था। फटा हुआ कफ़न ज़मीन पर पड़ा था।

इस प्रकार की अनेक कहानियाँ तिब्बत के भले आदमियों के मुँह से सुनने को मिलती हैं। इनमें इन लोगों का बड़ा पक्का विश्वास रहता है और इन कहानियों को ही लेकर तिब्बत के बारे में एक बड़ा पोथा अलग तैयार किया जा सकता है।

जादू का ख़ञ्जर

जादू के ख़ञ्जर—फुर्बा—जिनका प्रयोग प्राय: लामा जादूगर करते हैं, काँसे, लकड़ी या हाथीदाँत के बनाये जाते हैं। ये देखने में बड़े बढ़िया होते हैं और इन पर प्राय: सुन्दर चित्रकारी भी रहती है।

साधारण सीधे-सादे आदमी इसके नाम से कोसों दूर भागते हैं। मजाल नहीं कि उनकी जानकारी में उनके घर के भीतर या आसपास कहीं पड़ोस में यह ख़ञ्जर रख दिया जाय। जादूगर लोग इस भयानक औज़ार से बड़े-बड़े जिन्द वश में किये रहते हैं। अवसर पाकर ये अपने को स्वतन्त्र कर लेने की चेष्टा करने में कुछ कसर नहीं करते और यदि इनको फिर जीतने की युक्ति न मालूम हुई तो जिसके पास यह ख़ञ्जर रहता है उसके प्राणों पर ही आ बनती है।

उत्तरी तिब्बत में—यात्रा में—एक बार मेरा साथ लामा लोगों के एक जत्थे से हो गया। बात-बात में पता चला कि ये लोग एक फुर्बा ले जा रहे हैं। जिस लामा का यह फुर्बा था उसे मरे अभी थोड़े ही दिन हुए थे और इसी अरसे में इस जादू के ख़ञ्जर ने सैकड़ों आफ़तें ढा दी थीं। तीन त्रापाओं ने इसे छू लिया था। उनमें से दो तो मर गये और तीसरे ने घोड़े पर से गिरकर अपनी

टाँग तोड़ ली थी। मठ के आँगन में झण्डे का जो बाँस था वह अपने आप टूट गया था और इससे बढ़कर बुरा असगुन दूसरा कोई हो ही नहीं सकता था। लोगों ने किसी तरकीब से इस ख़ञ्जर को एक बक्स में बन्द कर दिया था और किसी देवस्थान के समीप एक गुफा में छोड़ने के लिए ले आये थे। इस देवस्थान के आस-पास के गाँववालों ने जब यह वृत्तान्त सुना तो वे मरने-मारने को तैयार हो गये।

बेचारे त्रापा—जो मन्त्रों से अभिमन्त्रित काग़ज़ के सैकड़ों पन्नों की तह में लपेटकर, एक सन्दूक़ची में रख ऊपर से मुहर आदि लगाकर, किसी प्रकार इस ख़ञ्जर को यहाँ तक ले आये थे—घबरा गये कि अब क्या करें! इस जादू के ख़ञ्जर को एक बार देखने के लिए मेरी उत्सुकता बढ़ गई।

"मुझे अपना फुर्बा दिखा दो" मैंने कहा—"शायद मैं तुम्हारी कुछ सहायता कर सकूँ।"

पर ख़ञ्जर को बक्स से बाहर करने का उनको साहस नहीं हुआ। बहुत कहने-सुनने पर उन्होंने मुझे स्वयं अपने हाथों से उसे निकालने की अनुमति दे दी।

फुर्बा पुरानी तिब्बती कला का एक अच्छा नमूना था—देखने में बहुत ही सुन्दर। मेरी इच्छा उसे अपने पास रखने की हुई। पर मैं जानती थी कि त्रापा लोग उसे किसी तरह देने को राज़ी न होंगे। उसी रात को सबेरा होने से कुछ पहले ही ख़ञ्जर को लेकर मैं चुपचाप तम्बू के बाहर कुछ दूर निकल गई। मैंने उसे एक स्थान पर गड़ा दिया और उसे हथियाने की कोई तरकीब सोचने लगी।

मुझे वहाँ इसी प्रकार बैठे-बैठे कई घण्टे बीत गये। मेरी आँखें भी नींद के भार से झँपने लगीं। एकाएक मुझे ऐसा

मालूम हुआ जैसे खञ्जर से कुछ दूर के अन्तर पर कोई शक्ल आगे को बढ़ रही है। कोई लामा मालूम पड़ता था। दबे पाँव आगे बढ़कर उस लामा ने खञ्जर के लिए हाथ बढ़ाया ही था कि एक क्षण में झपटकर—इसके पहले कि वह फुर्बे पर हाथ लगाये—मैंने उसे उखाड़ लिया।

खञ्जर था ही इतना बढ़िया कि उसे देखकर किसी आदमी का ईमान बदल जाय। यह आदमी सम्भवतः अपने और साथियों की अपेक्षा कम डरपोक था। उसने सोचा होगा कि मैं सो रही हूँ—खञ्जर हथियाने का यह अच्छा मौक़ा है। और वह उसे चुराकर बेच देगा।

एकाएक मुझे एक बात सूझी। मैं तुरन्त तम्बू के भीतर लौट आई। जो आदमी अभी-अभी बाहर से आवेगा या आया होगा, वही चोर है।

तम्बू में पहुँचकर मैंने देखा सभी पालथी मारे बैठे थे और सर हिला हिलाकर भूत प्रेत आदि को दूर रखने के लिए मन्त्रों का पाठ कर रहे थे।

मैंने यौङ्गदेन को पास बुलाकर पूछा—"इनमें से कौन कुछ देर पहले बाहर गया था?"

"कोई नहीं।" उसने कहा—"डर के मारे ये अधमरे हो रहे हैं। नित्य-कर्मों के लिए तम्बू के बाहर निकलने की भी किसी की हिम्मत नहीं हुई।"

"ओहो, तब क्या मैं सपना देख रही थी?" मैंने स्वयं सोचा। फिर ज्यों का त्यों सब हाल सब लोगों से कह सुनाया।

"अर्र्र्र्" सब के सब एक स्वर में चिल्ला पड़े—"निश्चय हो वे हमारे बड़े लामा थे। उन्होंने अपना फुर्बा वापस लेना चाहा होगा। शायद उसे पा जाने पर वे वहीं आपका अन्त भी कर

देते। लेकिन 'जेत्सुन्मा' तुम एक सच्ची 'गोमछेन् मा' हो, यद्यपि कुछ लोग तुम्हें फिलिङ्ग* कहते हैं। हमारे त्सवाद् लामा (आध्यात्मिक गुरु) बड़े भारी जादूगर थे; फिर भी अपना फुर्बा वे तुमसे छीन न सके। अब उसे तुम्हीं अपने पास रक्खो। हाँ, वह ख़ञ्जर तुम्हारे पास रहेगा और अब किसी को हानि नहीं पहुँचावेगा।"

वे सब एक साथ बोले और एक साँस में यह सब का सब कह गये। मैंने देखा, भय के मारे उनकी आँखें निकल आई हैं। यह जानकर कि उनके शक्तिशाली बड़े लामा उनके इतने निकट आ गये थे, वे काँप गये। यह सोचकर कि अब उस भयानक जादू के ख़ञ्जर से उन्हें छुटकारा मिल गया है, वे बहुत कुछ प्रसन्न दीखने लगे।

निर्भयता प्राप्त करने के कुछ उपाय

शायद ही संसार का कोई दूसरा देश ऐसा हो जहाँ के निवासियों में तिब्बत से अधिक भूत-प्रेत, टोना-टटका-सम्बन्धी कहानियाँ सुनने में आती हों। वास्तव में यदि किंवदन्तियों पर भरोसा करके दोनों की गिनती की जाय तो यही पता चलेगा कि तिब्बत में रहनेवाले आदमियों की संख्या यहाँ के पेड़ों, चट्टानों, घाटियों, झीलों, झरनों आदि में लुके-छिपे भूतों और चुड़ैलों की अपेक्षा कहीं कम है।

इन भूतों को अपने वश में लाने का गुण सभी के पास नहीं होता। यह विद्या जिसे मालूम होती है, उसकी ख़ुशामद करने को पचासों आदमी हमेशा तैयार रहते हैं। मन्त्रों की दीक्षा के वास्ते चेले बनाने के लिए सैकड़ों उसके तलवे चाटते रहते हैं।

* विदेशी व्यक्ति।

लेकिन जादूगर लोगों को इस बात के लिए राज़ी कर लेना हँसी-खेल नहीं है। किसी को अपना चेला बनाने के पूर्व वे उसकी कठिन से कठिन परीक्षा लेते हैं। एक आदमी को, जिससे मेरी थोड़ी बहुत जान-पहचान थी, स्वयं एक ऐसी परीक्षा देनी पड़ी थी।

जिस गोमछेन् को उसने अपना गुरु बनाना चाहा था वह आम्दो का एक लामा था। उसने इस आदमी को सीधे एक सुनसान भयावने टीले की ओर रवाना किया। एक भूत इस टीले पर रहा करता था। यहाँ पहुँचकर अपने को एक पेड़ से बाँधकर इसी भूत को ललकारने का उस आदमी को आदेश था। चाहे कितना भी भय उसे लगे, किन्तु उसका काम बराबर २४ घण्टे तक वहीं बँधे खड़ा रहना था। न तो उसे अपने छुड़ाने की बात ध्यान में लानी चाहिए थी और न वहाँ से भागने की।

साधारणतः चेलों की पहली परीक्षा यही हुआ करती है। हाँ, कभी-कभी चेलेराम को एक दिन के बजाय तीन दिन और तीन रात तक बराबर बिना खाये पिये, नींद और थकावट को दूर करके वहीं बँधे खड़े रहना पड़ता है। ऐसी शारीरिक दशा और मानसिक अवस्था में स्वाभाविक तौर पर पत्ता तक गिरने से ऐसा मालूम होगा कि भूत आ गया और मनुष्य डर जायगा—यह हम आसानी से समझ सकते हैं।

एक दूसरे लामा ने अपने शिष्य को इसी भाँति एक जंगल में भेजा, जहाँ कोई थाग्स-यांग नाम का दानव रहता था। चीते के रूप में अचानक प्रकट होकर जङ्गल में चरते हुए पशुओं को मारकर खा जाने की इसकी आदत थी।

जङ्गल में पहुँचकर एक पेड़ से बँधकर शिष्य को अपने को एक गाय समझ लेना था। गाय ही की आवाज़ में उसे रह-रह-

कर चिल्लाना भी था। इसी तरह तीन दिन भूख-प्यास में बिताकर जब वह अपने गुरु लामा के पास पहुँचता तो उसका फ़ैसला होता।

जिस शिष्य का उल्लेख पीछे किया गया है उसे फ़ैसला सुनने के लिए अधिक समय तक प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ी। पहले ही दिन एक चीते ने आकर उसे चीर-फाड़कर खा डाला। लेकिन यह चीता थाग्स-यांग ही था या कोई दूसरा जानवर—इसके सोचने की किसी ने आवश्यकता नहीं समझी।

अगर यह मान भी लिया जाय कि बहुत सी अनहोनी बातें सचमुच की कभी-कभी घट जाती हैं तो भी यह निश्चय है कि ऐसे अवसर कम आते हैं। असल बात तो यह है कि जिस तरह से लगातार कई घण्टों बल्कि दिनों तक ये लोग सुनसान डरावनी जगहों में भूतों का आवाहन करते रहते हैं, उससे इन लोगों के पल-पल पर भूतों और चुड़ैलों के आ जाने का भ्रम हो जाना अस्वाभाविक बात नहीं है।

मैंने इस सम्बन्ध में कई लामाओं से प्रश्न किये। एक बार मुझे बतलाया गया कि अविश्वास और विश्वास दोनों आवश्यक अङ्ग हैं। पहले भूतों की सत्ता में विश्वास रखना होता है और बाद को अविश्वास। लेकिन अगर ठीक समय से पहले अविश्वास विश्वास की जगह ले ले तो सारा किया-कराया मिट्टी में मिल जाता है; अर्थात् निर्भयता प्राप्त करने की सारी पिछली युक्तियाँ निरर्थक सिद्ध हो जाती हैं।

गा (पूर्वी तिब्बत) के एक गोमछेन से, जिनका शुभनाम कुशोग् वांगछेन् था, इस प्रकार के भय से होनेवाली आकस्मिक मृत्यु के सम्बन्ध में मेरी बातचीत हुई।

लामा ने कहा—"इस प्रकार जिनकी मृत्यु होती है वे लोग डर के मारे ही मर जाते हैं। उनका भ्रम उनकी कल्पना-शक्ति का पैदा किया हुआ होता है। जो भूतों में विश्वास नहीं करता, वह कभी भूतों द्वारा मारा नहीं जा सकता।"

इसी लामा ने मुझसे एक बात और भी कही थी—"अगर कोई इस बात का पक्का विश्वास कर ले कि बाघ नाम का कोई भयानक जन्तु नहीं होता तो उसे इस बात का भी पूर्ण विश्वास हो जायगा कि बाघ उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकता। बाघ उसके सामने उस पर टूट पड़ने को तैयार हो, लेकिन वह निर्भय होकर ज्यों का त्यों अपनी जगह पर बैठा रहेगा।

"हम लोग स्वयं अपनी कल्पना-शक्ति से अपने भ्रम की उत्पत्ति करते हैं; जिस तरह की चाहते हैं उस तरह की वस्तुओं के आकार निर्माण करते हैं*। इनमें से कुछ हमारे लिए लाभकर होते हैं और कुछ हानिकर। हमें तर्क द्वारा इन कल्पना-निर्मित आकारों पर अधिकार रखना चाहिए।

"एक उदाहरण से यह बात और स्पष्ट हो जायगी। एक आदमी अपने झोंपड़े में अलग रहता है। उस झोंपड़े से कुछ दूरी पर एक नदी है। नदी में से निकलकर रेंगती हुई मछलियाँ उसके झोंपड़े तक नहीं आ सकतीं। हाँ, अगर उस नदी से एक नाला निकालकर उसके झोंपड़े तक लाया जाय तो पानी के साथ-साथ मछलियाँ अपने आप चली आवेंगी।

"इसी प्रकार नाले निकालकर हम अपने मस्तिष्क के पास तक असम्भव वस्तुएँ ले आ सकने में समर्थ होते हैं और हमें इन नालों के निकालने में अपनी सारी बुद्धि का सहारा लेना

---

* इन्हीं आकारों (तुल्प) का वर्णन आठवें अध्याय में देखिए।

पड़ता है। इनमें से कई कभी-कभी बड़े आपत्तिजनक निकल आते हैं। तब हमारे प्राणों पर ही बन आती है।"

भयानक गुप्त भोज

वास्तव में इन पंक्तियों को पढ़कर पाठकों को हँसी नहीं आनी चाहिए और न किसी प्रकार का आश्चर्य ही प्रकट करना चाहिए। इससे कहीं बढ़कर भयानक और अद्भुत क्रिया "चोड्" होती है। "चोड्" का अर्थ होता है काट-काटकर फेंकना। इसे करनेवाला जो कुछ करता है अपने आप करता है और अकेला होता है। उसे न तो किसी की सहायता की आवश्यकता होती है और न किसी की शिक्षा की। और इसके करनेवाले का परिणाम होता है बीमारी, पागलपन या मृत्यु। इन तीन परिणामों के अपवाद बहुत कम सुने जाते हैं।

श्मशान या ऐसी ही कोई भयावनी जगह इस काम के लिए ठीक समझी जाती है। और अगर इस जगह के बारे में कोई डरावनी कहानी मशहूर हो या उसके पास हाल ही में कोई दुर्घटना हो गई हो तो इससे बढ़कर उपयुक्त स्थान दूसरा हो ही नहीं सकता।

'चोड्' एक प्रकार का रूपक है जिसमें, समझना चाहिए कि आरम्भ से अन्त तक एक ही पात्र होता है। चोड् करनेवाले को और अन्य पात्रों की अपेक्षा पहले अपना "पार्ट" भली भाँति समझ लेना होता है। उसे धार्मिक नृत्य के लिए आवश्यक अङ्ग-सञ्चालन की विधि सीखनी पड़ती है जिसमें एक नियम से पैर पृथ्वी पर पटके जाते हैं और साथ-साथ जादू का मन्त्र भी पढ़ा जाता है। फिर उसे क़ायदे के अनुसार दोर्जे और फुर्ब को पकड़ने का ढङ्ग आना चाहिए और इसके बाद डमरू और आदमी

की जाँघ की हड्डी के बने हुए एक बिगुल (कांगलिंग) के बजाने का तरीक़ा आना चाहिए।

स्थान के अभाव से मैं चोड् के मन्त्रों का अनुवाद दे सकने में असमर्थ हूँ। इसमें बड़े लम्बे-लम्बे वाक्य होते हैं जिनको दुहराने के साथ ही साथ साधक नालजोर्पा "पैरों के नीचे" अपनी समस्त मनोवृत्तियों को "कुचल देता है" और अपने सम्पूर्ण स्वार्थ-भाव की हिंसा कर डालता है। इस क्रिया का सबसे मज़ेदार हिस्सा वह है जिसमें इसे करनेवाला अपना बिगुल बजा-बजाकर भूखे भूतों को निमन्त्रण में सम्मिलित होने के लिए बुलाता है।

वह कल्पना करता है कि एक चुड़ैल, जो वास्तव में उसकी अपनी इच्छाशक्ति के अतिरिक्त और कुछ नहीं है, उसके सर के ऊपरी हिस्से से निकलकर उसके सामने खड़ी हो गई। इस चुड़ैल के हाथों में एक तलवार होती है जिससे वह एक बार में उसका सर धड़ से अलग कर देती है और तब जब तक कि झुण्ड के झुण्ड भूत, वैताल आदि इस भोज के पास आकर इकट्ठा होते रहते हैं वह उसके और अंगों के टुकड़े-टुकड़े करके काटती है। खाल खींचकर अलग करती है, पेट की चीर-फाड़ करती है। अँतड़ियाँ अलग गिर पड़ती हैं। ख़ून की नदी बह जाती है और भोजक जहाँ-तहाँ शोर करते हुए नोच-खसोट करने में लग जाते हैं। इसी बीच में साधक इस प्रकार के वाक्यों से उन्हें उत्तेजित भी करता रहता है—

"जन्म-जन्मान्तर में आज तक न जाने कितनी बार अपने शारीरिक सुख के लिए, अपने को मृत्यु के मुख से बचाने के लिए, मैंने न जाने कितने जीवों को सताकर अपने खाने-पीने और रहने का प्रबन्ध किया होगा। आज मैं अपने इन सब कर्मों का

प्रायश्चित्त कर रहा हूँ। आज अपने इस अमूल्य शरीर को मैं अपनी इच्छा से समाप्त करता हूँ।

"मैं भूखे को अपना मांस, प्यासे को अपना रक्त, नंगों को शरीर ढँकने के लिए चमड़ी और जाड़े में ठिठुरते हुओं को तापने के लिए अपनी हड्डियाँ देता हूँ। दुखियों के लिए अपने सुख को और मरते हुए प्राणियों के लिए अपनी श्वास को छोड़ता हूँ।

"अगर मैं अपने शरीर का परित्याग करने में थोड़ा भी पीछे हटूँ तो मुझ पर लानत है! पापिनि चुड़ैल! अगर तू मेरे मांस को काट-काटकर इन भूखे भूतों को न खिला सके तो तुझे धिक्कार है।"

इस क्रिया का नाम है 'लाल भोज' और इसके बाद ही जो दूसरी क्रिया होती है, उसका 'काला भोज'।

भूतों के निमन्त्रण का यह कल्पित दृश्य लुप्त हो जाता है और उनके अट्टहास की आवाज़ भी क्षीण हो जाती है। थोड़ी देर के बाद नालजोर्पा भी अपने आपे में आ जाता है। इस काल्पनिक आत्म-बलिदान से उसमें जो उत्तेजना आ गई थी, वह भी शान्त हो जाती है।

अब उसे कल्पना करनी पड़ती है कि वह काले कीचड़ से भरे हुए एक गढ़े से निकाली गई मनुष्य की सूखी हड्डियों का एक ढेर हो गया है। काले कीचड़ से और कुछ नहीं; दुःख, यातना, पातक और अन्य जघन्य कर्मों—जिनसे उसका पिछले जन्म में सम्बन्ध रहा है—आदि से मतलब है। उसे भली भाँति समझना पड़ता है कि त्याग की भावना ही विडम्बना है जिसका आधार थोथा अन्धा गर्व मात्र है। वास्तव में त्याग के लिए अब उसके पास कुछ है ही नहीं; क्योंकि वह स्वयं 'कुछ नहीं' है। ये बेकार की हड्डियाँ जो और कुछ नहीं अपने अस्तित्व इस "मैं" की सम्यक् रूप से

विस्मृति हैं—उसी गड्ढे में फिर डूब जावें–उसे इनसे कुछ सरोकार नहीं है। इस शान्त और मूक आत्म-त्याग के साथ-साथ बलि पर चढ़ जाने का घमण्ड दूर हो जाता है और इस क्रिया की समाप्ति होती है।

कुछ लामा इसी चोड् को करने के लिए १०८ श्मशानों और १०८ उपयुक्त झीलों की खोज करते-करते सारा तिब्बत देश ही नहीं बल्कि चीन, जापान और नैपाल तक का चक्कर काट आते हैं। और चाहे जो कुछ हो, लेकिन चोड् की इस विधिवत् क्रिया में जो गूढ़ रहस्य छिपा है उससे कोई इन्कार नहीं कर सकता।

संयोगवश मुझे स्वयं अपनी आँखों से चोड् की क्रिया को बहुत समीप से देखने का अवसर प्राप्त हुआ है। मेरे पास का मक्खन समाप्त हो गया था और इसकी खोज के लिए मुझे स्वयं बाहर जाने का कष्ट करना पड़ा था। उस समय मैं उत्तरी तिब्बत में यात्रा कर रही थी और हमारा पड़ाव एक बड़ी थांग* में पड़ा हुआ था।

एकाएक घाटी की निःस्तब्धता को बेधती हुई एक आवाज़ मेरे कानों में पड़ी। आवाज़ कुछ भयानक और कर्कश थी। कई बार यह आवाज़ आई और डमरू का डमडम शब्द भी कुछ देर के बाद सुनाई पड़ा।

एकाएक मुझे ख़याल आया चोड् का; चोड् के अलावा कोई दूसरी बात हो ही नहीं सकती। मैं आवाज़ को लक्ष्य करके आगे बढ़ती गई। धीरे-धीरे शब्द भी साफ़-साफ़ सुनाई पड़ने लगे।

आसपास की पहाड़ी जगह ऐसी थी कि मुझे वहाँ उसके बहुत समीप ही की एक चट्टान के नीचे दबे पाँव जाकर छिपकर बैठ रहने का अवसर मिल गया। अब मैंने सतर्क होकर सब कुछ अपनी आँखों से देखना शुरू किया। कोई प्राज्ञपरामित की प्रशंसा में मन्त्र पढ़ रहा था—"ओऽम्! प्राज्ञदेव गये, चले गये।

---

* थांग=पहाड़ी चट्टानों या चौड़ी घाटी के बीच का सपाट मैदान।

ऊपर और ऊपर से भी ऊपर अपर लोक को चले गये। ओऽम्! स्वाहा !!"

कुछ देर के बाद डमरू के डमडम का गम्भीर शब्द भी धीमा पड़ा और धीरे-धीरे एकदम रुक गया। नालजोपा अब समाधि की अवस्था में चला गया। कुछ समय के बाद फिर चैतन्य होकर उसने अपना ज़ेन सँभाला। बायें हाथ में कांगट्टङ् और दायें में डमरू ऊपर ऊँचा उठाकर वह इस प्रकार खड़ा हो गया जैसे किसी अदृश्य शत्रु को युद्ध के लिए ललकार रहा हो।

"मैं, निर्भय नालजोर्पा", उसने ज़ोर से पुकारकर कहा—"मैं स्वयं को, देवों को और दानवों को यों कुचल देता हूँ।" उसकी आवाज़ और ऊँची हुई—"ओ लामा, नालजोर्पा, चापा और खादोमा आओ, आओ तुम सब आओ और सब के सब इस नृत्य में मेरा साथ दो।"

अब उसने अपना नृत्य शुरू किया। वह चारों कोनों की ओर चार बार झुका। कहता गया "मैं गर्व के दानव को कुचलता हूँ। क्रोध के दानव को, विषय और मूर्खता के दानवों को भी कुचलता हूँ।"

हर एक "कुचलता हूँ" के साथ-साथ सचमुच वह ज़ोरों से पैर को पृथ्वी पर दे मारता था और 'त्सेनशेस त्सेन' का उच्चारण करता जाता था।

उसने अपना लबादा, जो ज़मीन में लिथड़ रहा था, फिर सभाला और डमरू और तुरही को एक ओर रख दिया। मन्त्रों का उच्चारण करते-करते उसने अपने हाथ से एक छोटा सा तम्बू खड़ा किया। तम्बू के सफ़ेद कपड़े में तीनों कोनों में लाल और नीले रंगों में 'ओं, आ' और 'हुँ' लिखा हुआ था। पाँचों अर्थ रखनेवाले रंगों—लाल, नीला, हरा, पीला और सफ़ेद—की बहुत सी झालरें छत से लटक रही थीं।

नालजोर्पा ने अपने चारों ओर एक बार देखा; फिर उसकी निगाह पास पड़े हुए एक मुर्दे की ओर गई। साफ़ मालूम होता था कि वह कुछ हिचक सा रहा है और उसकी हिम्मत उसे धोखा दे रही है। उसने एक गहरी साँस ली और कई बार माथे का पसीना हाथों से पोंछा और तब अपने को झकझोरकर ऐसी मुखमुद्रा बना ली जैसे उसने अन्त में अपना साहस बटोर लिया हो। उसने अपनी तुरही उठाई और उसे बजाना शुरू किया। पहले धीरे-धीरे रुक-रुककर, फिर तेज़ी के साथ ज़ोर-ज़ोर से।

"यह लो! मैं अपना बदला चुकाये देता हूँ" एकाएक वह चिल्लाया—"लो, अब तक मैंने तुम्हें खाया है। अब तुम्हारी बारी है। मुझे खाओ। आओ, भूखे भेड़ियो, आओ।

"आओ मैं, तुम्हें दावत देता हूँ। जल्दी आओ और मेरे शरीर का मांस नोच नोचकर खा जाओ। मैं तुम्हें बुला रहा हूँ।

"यह लो, यहाँ मैं—तुम्हारे लिए पके खेत, हरे-भरे जङ्गल खिले हुए फूलों का बग़ीचा सफ़ेद और लाल भोजन और वस्त्र दोनों देता हूँ। खाओ। खाओ। आओ!"

अब त्रापा पूरे आवेश में आ गया था। उसने ज़ोरों से अपना कांगलिंग बजाया और इस ज़ोर से चीख़ मारकर वह ऊपर उछला कि जल्दी में उसका सिर छोटे तम्बू की छत से टकरा गया और तम्बू उसके ऊपर गिर पड़ा। कपड़ों के भीतर वह थोड़ी देर तक हाथ-पैर मारता रहा, फिर पागलों की तरह गम्भीर और भयानक चेहरा लिये हुए उसके बाहर निकला। अब रह-रहकर वह हाथ-पैर फेंक रहा था और कभी-कभी रह-रहकर कराह उठता था। स्पष्ट था कि इस समय वह बड़ी भारी यन्त्रणा में है। मैंने अब समझा चोड् हँसी-खेल नहीं है। वह बेचारा भूखे भूतों को अपने शरीर में दाँत गड़ा-गड़ाकर मांस काट-काटकर खाते हुए

सचमुच अनुभव कर रहा था। उसने अपने चारों ओर मुँह फेरकर देखा, फिर न जाने किसे सम्बोधित करके बातें करने लगा। सम्भवतः वह अपने सामने खड़े काल्पनिक भूतों को साफ़ देख रहा था।

मेरी काफ़ी दिलचस्पी हो रही थी, लेकिन बहुत देर तक केवल तमाशबीन की हैसियत से मैं देखती न रह सकी। मैंने सोचा यह बेचारा इसी यन्त्रणा में अपने को मार भी डालेगा। इसे बचाना चाहिए।

अस्तु, मैंने उसे जगा देने का विचार कर लिया, पर एक बात थी जो मुझे ऐसा करने से रोक रही थी। मैं जानती थी कि मेरे इस प्रकार बाधा देने से उसके काम में विघ्न पड़ जायगा, अपने दिमाग़ से वह इसे कभी ठीक न समझेगा। सम्भव है, वह बिगड़ भी खड़ा हो। कुछ देर के लिए मैं इस उधेड़-बुन में पड़ गई। इसी बीच में नालजोर्पा फिर दर्द के मारे कराहा।

मैं अब रुक न सकी। दौड़कर उसके पास पहुँची लेकिन जैसे ही उसने मुझे देखा वैसे ही वह कूदकर और तनकर खड़ा हो गया और पागलों की तरह सर झटक-झटककर कहने लगा—"आ, तू भूखी है। ले, मेरा मांस खा और मेरा ख़ून पी।"

मैं अपनी हँसी रोक न सकी। दया के बजाय उसकी मूर्खता पर मुझे थोड़ा सा क्रोध ही आ गया। "चुप रहो", मैंने डाँटकर कहा, "बको मत; यहाँ कोई भूत-प्रेत नहीं है। देखो, यह मैं हूँ।"

मैंने जो कुछ कहा उसे शायद उसने सुना भी नहीं। वह उसी तरह बड़बड़ाता रहा।

मैंने सोचा कि मैं जो लबादा ओढ़े हुए हूँ, उससे शायद मेरे चुड़ैल होने का कुछ भ्रम हो जाता हो। इससे मैंने उसे उतारकर फेंक दिया और कहा, "लो पहचानो, मैं कौन हूँ! औरत या चुड़ैल?"

किन्तु इससे कुछ विशेष लाभ नहीं हुआ। वह मुझे छोड़कर उस कम्बल को दूसरा भूत समझकर उसी से भिड़ गया। एका-एक उसका पैर तम्बू के एक खूँटे से लड़ गया और वह लड़खड़ाकर गिर पड़ा। उसके बदन में ऐसी कमज़ोरी आ गई थी कि गिरते-गिरते वह तुरन्त बेहोश हो गया। मैं प्रतीक्षा करती रही कि अब उठे, तब उठे; लेकिन उसे फिर छेड़ने का मुझे साहस नहीं हुआ। कहीं कुछ और समझकर वह और अधिक न डर जाय, इस भय से मैंने थोड़ी ही देर के बाद उससे बिना कुछ कहे-सुने चुपचाप एक ओर का रास्ता लिया।

जब मैं उधर से मुड़ी तो रास्ते में याद आया कि पास ही की एक पहाड़ी पर लामा राबजोम्स ग्यात्सो रहते थे। मैंने सोचा, चलकर इन लामा महोदय को सब बातों की सूचना दी जावे। सम्भव है, वे किसी प्रकार इस मूर्ख, चोड्-साधक के प्राणों की रक्षा कर लें।

जब मैं उनके पास पहुँची तो वे पालथी मारे, ध्यानावस्थ बैठे थे। जैसे ही उनका ध्यान मेरी ओर आकृष्ट हुआ, मैंने उन्हें सब कुछ बताकर उनसे सहायता करने की प्रार्थना की।

उनके होठों पर थोड़ी देर के लिए केवल एक मुस्कराहट आकर लुप्त हो गई।

"तुम चोड् के रहस्य से परिचित मालूम होती हो। जेत्सुन्मा, क्या यह बात सच है?"

"जी हाँ"।

वे फिर चुप हो गये। थोड़ी देर के बाद मैंने उन्हें अपनी बात की फिर याद दिलाई। उन्होंने कहा, "क्या तुम्हारे गुरु ने तुम्हें यह नहीं बताया था कि इस चोड् के सम्भवतः तीन परिणाम हुआ करते हैं—रोग, प्रमाद या मृत्यु। थर्प (परम मोक्ष) अमूल्य वस्तु है और किसी अमूल्य वस्तु की इच्छा रखनेवाले

प्राणी को भारी से भारी मूल्य भी देना पड़ता है। देखो, यदि तुम्हें 'सुगम मार्ग' पसन्द न हो तो तुम्हारे लिए अन्य भी कई रास्ते हैं। तुम उनमें से कोई एक अपने लिए चुन सकती हो"।

मैं क्या करती? चुप रही और थोड़ी देर बाद वहाँ से उठकर चली आई।

× × × ×

जिन लोगों को चोड् का फल एक बार प्राप्त हो जाता है, उन्हें फिर इस क्रिया के 'नाटकीय अङ्ग' के करने की कोई आवश्यकता नहीं रह जाती। तब केवल एकाग्रचित्त होकर बैठकर उसकी भिन्न-भिन्न अवस्थाओं को, मस्तिष्क में लाना पड़ता है और कुछ समय के बाद तो यह अभ्यास भी अनावश्यक सा हो जाता है।

पर पता नहीं अपने पिछले दिनों के सफल श्रम के सन्तोष को याद करके या किन्हीं और कारणों से जिन्हें केवल वही जानते हैं कभी-कभी कई गोमछेन तो एक साथ मिलकर चोड् करने के लिए इकट्ठे होते हैं। एक बार इस सम्मिलित नृत्य को देखने का भी मेरा सौभाग्य हुआ था। खाम प्रदेश के लम्बे क़द के आदमी बड़े सफ़ेद लबादों को ओढ़े हुए, तारों भरी रात में डमरू के ताल पर तुरही बजा-बजाकर नाचते थे। उनके तेजपूर्ण मुखमण्डल पर सांसारिक लिप्साओं को 'कुचल डालने' का गर्वोल्लास स्पष्ट रूप से अङ्कित था। नाचने के बाद वे अनिश्चित समय के लिए ध्याना-वस्थ हो गये। उसी ध्यान में पाल्थी मारे शरीर सीधा किये और आँखें मूँदे हुए वे सबेरा हो जाने पर भी कई घण्टों तक उसी प्रकार मूर्तिवत् बैठे रहे। मेरा विश्वास है, इस दृश्य को मैं कभी भी भुला न सकूँगी।

——

पाँचवाँ अध्याय

पुराने धर्म-गुरु और उनकी शिष्य-परम्परा

प्रस्तुत पुस्तक के इस अध्याय से सम्बन्ध रखनेवाली एक से एक बढ़कर रोचक कहानियाँ सैकड़ों बल्कि हज़ारों की तादाद में हम चाहें तो तिब्बतियों की ज़बानी सुन सकते हैं। दूसरी भाषाओं में अनूदित होकर दूसरे देशों में—जिनके निवासियों के रीति-रिवाज और आचार-विचार तिब्बतवासियों से बिल्कुल भिन्न हैं—जब ये कहानियाँ पढ़ी जाती हैं तो उनकी रोचकता अधिकांश रूप में नष्ट हो जाती है। वास्तव में अपने देश में, धार्मिक गुम्बाओं की अँधेरी कोठरियों में या चट्टानी गुफाओं की छतों के नीचे, इनमें और अधिक अन्धविश्वास रखनेवाले तिब्बती लामाओं के बीच में जब ये कहानियाँ कही-सुनी जाती हैं तो इनमें कुछ और ही बात होती है।

पहले मैं संक्षेप में तिलोपा का वृत्तान्त कहती हूँ। गोकि वह बंगाल का रहनेवाला था और अपने जीवन में एक बार भी उसने तिब्बती सीमा के इस पार पैर नहीं रक्खा था, किन्तु वह 'लाल टोपीवालों' की एक प्रमुख शाखा (ग्युद्-पा) का आध्यात्मिक गुरु माना जाता है। इसी सम्प्रदाय के एक संघ में लामा यौङ्देन ने पहले-पहल ८ वर्ष की आयु में प्रवेश किया था।

"तिलोपा बैठा है और उसके सामने उसकी धर्म्म-पुस्तक खुली रक्खी है जिसे वह बड़े ध्यान से पढ़ रहा है। फटे पुराने वस्त्रों को पहने हुए एक बुड्ढी औरत उसके पीछे कहीं से आकर खड़ी हो

जाती है और एकाएक पूछती है, "जो कुछ पढ़ रहे हो उसका कुछ मतलब भी तुम्हारी समझ में आ रहा है या योंही"......

तिलोपा इस सवाल पर चौंक उठता है। उसे कुछ क्रोध भी आ जाता है, किन्तु इसके पूर्व कि वह कुछ कह सके, भिखारिन बुढ़िया उसकी किताब पर थूक देती है।

इस बार तो तिलोपा के बदन में सर से पैर तक आग ही लग जाती है। इसके क्या माने? धर्मपुस्तक का इस प्रकार का अनादर करने की इस चुड़ैल की यह मजाल! वह उसकी लानत-मलामत करना शुरू करता है। इन सबका जवाब बुड्ढी केवल एक शब्द में देती है, जिसका कुछ अर्थ तिलोपा की समझ में नहीं आता। बुड्ढी किताब के पन्ने पर दुबारा थूकती है और उसके देखते देखते अदृश्य हो जाती है।

तिलोपा सोच में पड़ जाता है—यह बुड्ढी औरत कौन है? वह जो कुछ कह गई, उसका कुछ अर्थ भी है? ज़रूर होगा। क्या सचमुच वह जो कुछ पढ़ रहा है उसका असली मतलब उसकी समझ से बाहर है? कौन जाने! और विचित्र बुढ़िया कहाँ गुम हो गई? वह उसे ढूँढ़कर रहेगा।

अस्तु, वह उसकी तलाश में निकल पड़ता है। चलते-चलते खोजते-खोजते वह उसे एक श्मशान में अकेली बैठी देख पाता है जहाँ अँधेरे में उसकी 'आँखें अङ्गारों की तरह' चमकती थीं।

बुड्ढी तिलोपा को डाकिनियों की महारानी के पास जाने का आदेश करती है। अपने देश का रास्ता बताकर मार्ग में मिलने-वाली विपत्तियों से बचने के लिए वह उसे चलते-चलते एक मन्त्र भी बता देती है।

अपने रास्ते में तिलोपा को एक-दो नहीं सैकड़ों बाधाएँ मिलती हैं—नदी, नाले, बीहड़ वन, बनैले ख़ूँख़्वार जानवर, चक्कर-

दार रास्ते, भूत-प्रेत और डाकिनियाँ; किन्तु वह सब मुसीबतों को झेलता हुआ निरन्तर अपने मन्त्र का पाठ मन ही मन करते-करते डाकिनियों के देश तक पहुँच कर ही दम लेता है।

क़िले में घुसते समय उसके चारों ओर बड़े-बड़े दाँत निकाल-कर डाकिनियाँ आ-आकर खड़ी हो जाती हैं। पेड़ों की डालों और भालों की नोकों से उसका रास्ता रोक लेती हैं। क़िले की दीवालों से आग की लपटें निकलने लगती हैं लेकिन बताये हुए मन्त्र के बल से तिलोपा इन सबको नष्ट करता हुआ रानी के कमरे तक पहुँच ही जाता है।

डाकिनियों की रानी उसे भुलावे में डालने का यत्न करती है किन्तु तिलापा उसके पास पहुँचकर उसके चमचमाते हुए गहने पकड़कर खींच लेता है; फूलों की माला को नोचकर और रेशमी सुनहले राजसी वस्त्र झटककर पैरों के तले कुचल देता है फिर रानी का हाथ पकड़कर उसे सिंहासन से नीचे उतार लेता है।"

डाकिनियों पर इस प्रकार की विजय की सैकड़ों कहानियाँ तिब्बती साहित्य में मौजूद हैं। पर ये केवल कहानियाँ ही नहीं हैं—इनका असली मतलब गूढ़ और रहस्य से भरा हुआ रहता है। सत्य की खोज और अध्यात्मवाद की ओर इसमें इशारा रहता है।

तिलापा ने अपने धर्म की शिक्षा एक विद्वान् काश्मीरी ब्राह्मण नरोपा को दी और नरोपा के एक शिष्य लामा मार्पा ने उसका अपने देश-वासियों में प्रचार किया। लामा मार्पा के प्रिय शिष्य मिलारेस्पा का चेला दाग्पोल्हाजी हुआ और आज तक यह शिष्य-परम्परा बराबर काग्युद्-पा साम्प्रदायिकों में इसी प्रकार चली आ रही है।

नरोता काश्मीरी ब्राह्मण था जिसका समय ईसा की दूसरी सदी में माना गया है। वह दर्शन-शास्त्र का पक्का विद्वान् था और जादूगरी भी अच्छी जानता था। तिब्बत में नरोता नरोपा के नाम से विख्यात है।

नरोपा जिस राजा के दरबार में रहता था, किसी कारण उससे वह एक बार बहुत नाराज़ हो गया। जादू के ज़ोर स उसने उसे मार डालने का निश्चय किया। एक अलग कमरे में ड्रागपोइ डबथब् (मारण-विधि) करने के लिए उसने अपने को बन्द कर लिया।

जिस समय वह अपने इस उपचार-कर्म में लगा हुआ था, एकाएक उसके सामने जादू के चौकोर चौक के एक कोने के ऊपर एक डाकिनी प्रकट हुई और उसने उससे प्रश्न किया कि तुम इस राजा को मारकर उसे परलोक में अच्छी जगह भेजने की या उसके मृत शरीर में फिर से प्राण लाने की सामर्थ्य रखते हो या नहीं?

नरोपा ने सिर हिलाकर अपनी असमर्थता प्रकट कर दी। इस पर डाकिनी बहुत बिगड़ी। उसने उसे खूब ही फटकारा और बताया कि उसका यह कार्य्य जादूगरी के नियमों का सरासर अपमान कर रहा है। अपने इस अपराध के बदले में उसे ज़रूर ही मरकर घोर नरक में जाना पड़ेगा।

डर के मारे नरोपा काँपने लगा और उसने इस भयंकर दण्ड से बचने का उपाय पूछा। खादोमा ने उसे तिलोपा को ढूँढ़कर मिलने की सलाह दी और बतलाया कि अपने दुष्कर्मों के परिणाम से बचने के लिए केवल एक उपाय है—'त्सी चीग् लस चीग्' अर्थात् 'सुगम-मार्ग' और सिद्धान्त की शिक्षा-दीक्षा देनेवाले तिलोपा की शरण में जाना।

नरोपा अपना कार्य्य बन्द करके शीघ्र ही तिलोपा की खोज में बङ्गाल की ओर चल दिया।

तान्त्रिक तिलोपा एक अवधूत था। अवधूत लोगों के बारे में कहा जाता है कि वे न तो किसी वस्तु की इच्छा करते हैं और न अनिच्छा, उन्हें न किसी बात की शर्म होती है और न अपनी किसी चीज़ या अपने किसी कार्य पर गर्व। वे संसार के समस्त पदार्थों से उदासीन, कुटुम्ब, समाज और सब प्रकार के धार्मिक बन्धनों से मुक्त होकर स्वच्छन्द घूमते हैं।

जिस समय नरोपा तिलोपा के पास पहुँचा, वह एक बौद्ध-विहार के आँगन में नङ्ग-धड़ङ्ग बैठा हुआ मछलियाँ खा रहा था। मछली के काँटों को वहीं अपने पास बग़ल में जमा करता जाता था। एक भिक्षु उधर से निकला। उसने बौद्ध-विहार के भीतर ही इस प्रकार जीव-हत्या करने के लिए बहुत बुरा-भला कहा और उसे तुरन्त विहार से बाहर चले जाने का निर्देश किया।

तिलोपा ने कुछ जवाब नहीं दिया। बस, उसने कुछ मन्त्र होठों में पढ़े और अपनी उँगलियाँ झटकार दीं। फिर क्या था? उसके बग़ल में पड़े हुए काँटे हिलने लगे और एक क्षण में सब की सब मछलियाँ ज्यों की त्यों रेंगने लगीं; फिर वे ऊपर हवा में उठीं और कुछ समय के बाद न जाने कहाँ लोप हो गईं।

नरोपा भौचक्का खड़ा रह गया। एकाएक उसे ध्यान आया—तिलोपा! कहीं यह करामाती साधु तिलोपा ही तो नहीं था? उसने और लोगों से पूछताछ की तो मालूम हुआ कि हाँ, वही तिलोपा था जिसकी खोज में वह काश्मीर से पैदल चलकर इतनी कठिनाइयों के बाद बङ्गाल पहुँचा था। किन्तु अब क्या हो सकता था? तिलोपा न जाने क्या हुआ! हवा में मिला या धरती के भीतर समा गया। किसी को उसकी परछाईं तक न

मिल सकी। निराश होकर नरोपा फिर तिलोपा को खोजने चल पड़ा। कई बार ऐसा हुआ कि जहाँ वह जाता वहीं पता चलता कि यहाँ तिलोपा था तो अवश्य, पर अभी-अभी पता नहीं कहाँ चला गया।

बहुत सम्भव है कि नरोपा की जीवनी लिखनेवालों ने उसकी इस यात्रा के वर्णन में बहुत कुछ अपनी ओर से बढ़ाकर लिख मारा हो, लेकिन इसमें कोई सन्देह नहीं कि ये वर्णन काफ़ी दिल-चस्प हैं और इनका कुछ मतलब भी है।

कभी-कभी रास्ते में नरोपा की अजीब-अजीब तरह के लोगों से भेंट हो जाती थी जो और कुछ नहीं तिलोपा की माया-मात्र थे। एक बार एक घर का द्वार खोलकर एक आदमी निकला और उसने अन्न के बजाय उसके पात्र में मदिरा उँडेलनी शुरू कर दी। नरोपा क्रोध में वहाँ से चल दिया। उसके पीठ फेरते ही घर और घर के मालिक दोनों लुप्त हो गये। अभिमानी ब्राह्मण अपने पथ पर अकेला खड़ा रह गया। इतने में एक ओर से हँसने की आवाज़ आई और किसी ने कहा—वह आदमी मैं था मैं, "तिलोपा"।

दूसरे दिन एक देहाती आदमी ने नरोपा को पुकारकर रोका और एक जानवर की खाल निकालने के काम में उससे मदद करने को कहा। नरोपा नाक-भौं सिकोड़कर छिटककर दूर जा खड़ा हुआ और एक बार फिर मायावी तिलोपा की आवाज़ आई, "वह आदमी मैं था।"

और भी—रास्ते में नरोपा एक आदमी को अपनी स्त्री को बाल पकड़कर निर्दयतापूर्वक घसीटते हुए देखता है। उसके बाधा देने पर वह निष्ठुर पुरुष उससे कहता है—"यह औरत बड़ी पाजी है। मैं इसकी जान लेकर ही छोड़ूँगा। तुम इस काम में मेरी सहायता करो और नहीं तो चुपचाप अपना रास्ता लो, मुझे रोको

मत।" नरोपा अधिक नहीं सहन कर सकता। झपटकर उस आदमी को पछाड़कर वह उसके सीने पर चढ़ बैठता है। पर यह क्या! वहाँ उसके नीचे न तो वह आदमी है और न कहीं आस-पास कोई स्त्री!! भूतलीला—और क्या? एक परिचित स्वर फिर सुनाई पड़ता है, "वहाँ भी मैं था—मैं तिलोपा।"

और इस तरह के भुलावे नरोपा को एक-दो नहीं, बीसों-पचीसों दिये जाते हैं। हैरान होकर नरोपा पागलों की तरह तिलोपा का नाम ज़ोर-ज़ोर से पुकारता हुआ वन-वन ढूँढ़ता फिरता है। वह रास्ते में मिलनेवाले हर एक आदमी और जानवर के पैरों में गिर पड़ता है, पर तिलोपा का कहीं पता नहीं मिलता। वह जानता है कि उसका गुरु किसी वेश में मिल सकता है लेकिन वह यह नहीं जानता कि ढूँढ़े जाने पर वह कहाँ मिलेगा।

ऐसे बहुत से चकमों के बाद एक रोज़ आख़िर शाम होते-होते नरोपा एक श्मशान में पहुँचता है। इस बार वह धोखा नहीं खाता, अपने गुरु को पहचान लेता है और उसके पैरों में गिरकर उसकी धूलि अपने मस्तक पर ले लेता है। और इस बार मायावी तिलोपा भी उसे छोड़कर नहीं जाता।

इसके बाद कई वर्ष तक नरोपा तिलोपा के पीछे-पीछे लगा रहता है। जहाँ-जहाँ उसका गुरु जाता है वहाँ-वहाँ वह भी जाता है। परन्तु तिलोपा अभी उसकी कुछ परवा तक नहीं करता; कुछ सिखाना-पढ़ाना तो दूर रहा। हाँ, बारह बड़ी और बारह छोटी परीक्षाओं द्वारा नरोपा को अपनी गुरुभक्ति का परिचय अवश्य देना पड़ता है।

भारतीय प्रथा के अनुसार नरोपा अपने गुरु को भोजन कराने के लिए भिक्षा माँगकर ले आता है। नियम यह है कि गुरु के भोजन कर लेने पर उसी में से शिष्य भी अपने लिए कुछ प्रसाद

ले लेता है लेकिन भिक्षा-पात्र में कुछ छोड़ देने के बजाय तिलोपा वह सब का सब चट कर जाता है और कहता है—"यह चावल इतना मीठा है कि अभी मैं इतना ही आसानी से और खा सकता हूँ।"

दूसरी बार आज्ञा पाने के पहले ही नरोपा पात्र लेकर उस घर के दरवाज़े पर पहुँचा जहाँ का चावल उसके गुरु को इतना पसन्द आया था, पर इस बार उसे दरवाज़ा बन्द मिला। नरोपा ने न आव देखा न ताव, लात मारकर दरवाज़ा खोल दिया और अन्दर घुस पड़ा। रसोईघर में जाकर वह हंडे से अपने पात्र में चावल उँडेल ही रहा था कि लोग बग़ल के कमरे से दौड़े आये और उसे पीटते-पीटते अधमरा कर डाला। होश में आने पर नरोपा अपने गुरु के पास पहुँचा; किन्तु तिलोपा ने सहानुभूति-सूचक एक शब्द भी अपने मुँह से नहीं निकाला। "मैं देखता हूँ; मेरे कारण तुम्हें थोड़ी-सी मार खानी पड़ गई। बोलो, क्या मुझे गुरु बनाने का तुम्हें अब भी अफ़सोस नहीं है?" नरोपा इसको मानने के लिए तैयार नहीं होता। यह कौन सी बड़ी बात है। वह अपने गुरु के लिए आवश्यकता पड़ने पर जान तक दे सकता है।

दूसरे दिन राह में चलते-चलते जब एक गन्दे पानी का नाला दिखलाई पड़ा तो तिलोपा ने अपने शिष्यों से पूछा, "अगर मैं हुक्म दूँ तो तुममें से कौन, उस गन्दे पानी को पीने के लिए तैयार हो सकता है? और जब तक दूसरे शिष्य एक दूसरे का मुँह ताकते खड़े रहते हैं, नरोपा दौड़कर चुल्लू से भर भरकर वह पानी पीने लगता है। न तो उसे गन्दगी से झिझक होती है और न अपने धर्म-भ्रष्ट होने की हिचक।

एक दूसरी परीक्षा इससे कुछ कड़ी होती है।

एक रोज़ गुरु के लिए भोजन की सामग्री लेकर जब नरोपा लौटा तो क्या देखता है कि तिलोपा कई बड़े बड़े सूये आग में तपाये

लिए तैयार बैठा है। अचम्भे में आकर उसने अपने गुरु से इसका प्रयोजन पूछा।

योगी हँसा।

"अच्छा यह तो बतलाओ", उसने पूछा—"कि क्या तुम मेरी प्रसन्नता के लिए थोड़ा-बहुत कष्ट भी सहन कर सकते हो?"

नरोपा ने उत्तर दिया, "गुरुवर, मेरा यह नश्वर शरीर आपका है। आप इसका जैसा चाहिए, वैसा उपयोग कीजिए।"

तिलोपा ने एक-एक करके नरोपा के बीसों नाखूनों में बीस सूये ठोंक दिये और कहा, "मेरी प्रतीक्षा करना, मैं अभी आता हूँ।" इतना कहकर बाहर से दरवाज़ा बन्द करके गुरु चला गया और चेला उसी के भीतर बन्द बैठा रहा।

कई दिन बीत गये। और कई दिन बिता चुकने के बाद तिलोपा जब वापस लौटा तो उसने उसी तरह नरोपा को सूये गड़ाये हुए ज़मीन पर बैठे देखा।

"तुम अब तक अकेले बैठे क्या सोच रहे थे? बताओ, क्या अब भी तुम्हारी समझ में यह बात नहीं आई कि मुझ जैसे कठोर-हृदय, निर्दय व्यक्ति का साथ छोड़ने में ही तुम्हारी भलाई है?"

"मैं अब तक यही सोचता रहा कि अगर आपकी दया मेरे ऊपर न हो सकी तो फिर 'सुगम-मार्ग' के सिद्धान्तों को मुझे और कोई नहीं समझा सकेगा। इनको जाने बिना जो-जो यन्त्रणाएँ नरक में मुझे भुगतनी पड़ेंगी, उन्हीं के बारे में मैं सोचता रहा था।" बेचारे नरोपा ने जवाब दिया।

इस तरह कई वर्ष बीत गये, और इसी बीच में कभी नरोपा को छत पर से नीचे कूदना पड़ा और कभी आग में से होकर निकलना पड़ा। इस प्रकार के तरह-तरह के जोखिम के काम वह अपने गुरु को प्रसन्न रखने के लिए करता रहा। वह गुरु की कोई

बात नहीं टालता था और उसके वाक्यों को वेद की तरह प्रमाण समझता था। लेकिन तिलोपा ऐसा-वैसा गुरु तो था नहीं, जो इतनी आसानी से ख़ुश हो जाय।

इस प्रसङ्ग की एक आख़िरी कहानी और सुनाकर मैं समाप्त करूँगी। वह कुछ मज़ेदार भी है।

गुरु और चेले दोनो अपने रास्ते पर चले जा रहे थे कि उन्हें शादी करके लौटती हुई एक बारात दिखलाई पड़ी। उनके साथ में दुलहन की पालकी भी थी। तिलोपा ने नरोपा से कहा—"मुझे उस औरत की जरूरत है। जाओ, उसे मेरे लिए उन लोगों से माँग लाओ।"

बिना एक क्षण रुके हुए नरोपा बारात के बीच में घुस गया और पालकी की ओर बढ़ा। पहले तो लोग यह समझे कि ब्राह्मण है, शायद आशीर्वाद देने जा रहा हो, उसे किसी ने रोका नहीं। पर जब नरोपा दुलहन का हाथ पकड़कर उसे पालकी से बाहर निकालकर एक ओर खींचने लगा तो किसी ने ईंट, किसी ने पत्थर, किसी ने पालकी का बाँस या डण्डा—जिसे जो कुछ भी मिला—लेकर उसके ऊपर प्रहार करना आरम्भ किया। चारों ओर से लोग उस पर टूट पड़े और मारते-मारते बेचारे को अधमरा कर दिया। हाँफते-हाँफते जब नरोपा गिर पड़ा तो वे उसे वहीं छोड़ पालकी उठाकर चलते बने।

होश में आ जाने पर किसी तरह दौड़कर जब नरोपा अपने सनकी गुरु के पास पहुँचा तो एक बार फिर उससे वही सवाल किया गया। "क्या तुम्हें अब भी मेरे साथ रहने का......" और एक बार फिर गुरुभक्त चेले ने मस्तक नवाकर उत्तर दिया कि ऐसे गुरु का चेला कहलाने के लिए वह इस तरह की सैकड़ों मौतों का सामना हँसते-हँसते कर लेगा।

अन्त में नरोपा को अपने परिश्रम का फल मिलकर रहा: लेकिन किस तरह? उसकी उसके गुरु ने नियमित रूप से शिक्षा-दीक्षा नहीं की। एक दिन—जब कि दोनों धूनी के पास बैठे थे—एकाएक तिलोपा ने अपना जूता उठाकर नरोपा के मुँह पर तड़ाक से दे मारा और एकदम आसमान के सब तारे और चन्द्रमा भी नरोपा को सूरज की रोशनी में हो दिखलाई पड़ गये और "सुगम-मार्ग" का प्रत्येक तत्त्व उसकी समझ में अपने आप आ गया। तिलोपा की अपने शिष्य के इस ढङ्ग पर ज्ञान-चक्षु खोलने की विधि 'त्स्-आन्' सम्प्रदाय के चीनी उपदेशकों के तरीके से बहुत कुछ मिलती-जुलती है।

बाद में नरोपा के बहुत से चेले हुए। किंवदन्तियों के अनुसार वह स्वयं बहुत ही दयालु गुरु था। अपने शिष्यों को वह अपनी बीती हुई—चेले बनने के समय की—कठिनाइयों का बयान बड़े चाव से सुनाता था और स्वयं उनके साथ बहुत अच्छा बर्त्ताव करता था।

मैं पहले कह चुकी हूँ कि तिब्बत में नरोपा लामा मार्पा के आध्यात्मिक गुरु की हैसियत से प्रसिद्ध है। इसी लामा मार्पा का शिष्य साधु-कवि मिलारेस्पा था जिसके धार्मिक गीत आज भी तिब्बत में सबसे अधिक लोकप्रिय हैं।

मिलारेस्पा को भी अपने गुरु मार्पा से उसी प्रकार हैरान होना पड़ा था जैसे नरोपा को अपने गुरु तिलोपा से; क्योंकि मार्पा नरोपा की भाँति दयावान् नहीं बल्कि उसका बिल्कुल ही उल्टा था। मिलारेस्पा को अपने आप पत्थर काट-काटकर अपनी पीठ पर ढो-ढोकर लाना था और उसे अकेले ही इनसे—बिना किसी की मदद लिये हुए—एक मकान खड़ा करने का हुक्म था।

मकान कई बार बनकर तैयार हुआ और मार्पा ने उसे एकदम गिराकर फिर नये सिरे से खड़ा करने का हुक्म दिया। अन्त में जो मकान बनकर तैयार हुआ वह आज भी दक्षिणी तिब्बत के 'ल्होब्राग' में मौजूद है।

इस तरह की कहानियों में तिब्बतियों का बड़ा पक्का विश्वास होता है और अगर हम यह समझ लें कि ये कहानियाँ बीते हुए समय की याद हैं और आजकल के ज़माने में ऐसी घटनाओं का होना असम्भव बात है तो यह हमारी भूल होगी। मार्पा के समय से आज तक तिब्बती लोगों के विचार वैसे ही बने हुए हैं; उनमें थोड़ा भी अदल-बदल नहीं हुआ है। अपनी यात्रा के सिलसिले में मुझे कई घरों में मेहमान बनकर टिकना पड़ा है, जहाँ तिब्बत के प्राचीन धर्म्म-साहित्य में मिलनेवाली कहानियाँ जीते-जागते रूप में इन लोगों के बीच देखने को मिली हैं। आज भी उसी पुराने ढङ्ग पर गुरु लामा की लोग तलाश करते हैं और उसकी प्रसन्नता के लिए हर प्रकार के उपाय किये जाते हैं।

मुझे स्वयं अपनी जान-पहचान के कई साधु और नालजोपा मिले जिन्होंने स्वयं अपने चेले बनने की कहानियाँ मुझे ज्यों की त्यों सुनाईं। यह अवश्य है कि इन लोगों में नरोपा और मिलारेस्पा का सा उत्साह नहीं मिलता; क्योंकि ये दोनों चेले अपने समय के असाधारण व्यक्तियों में से थे। पर फिर भी आजकल के दिनों में भी गुरु को प्रसन्न करने के लिए चेले जिन कठिनाइयों का सामना हँसी-ख़ुशी से करने को तैयार रहते हैं उसका पता तो चल ही जाता है। ऐसी कहानियाँ संख्या में एक दो नहीं, सैकड़ों हैं। शिष्यों के योग्य गुरु लामाओं की खोज में भगीरथ-प्रयत्नों के विषय में मैंने जितनी कहानियाँ सुनी हैं उन सबमें नीचे-वाली ठेठ तिब्बती मालूम हुई।

येशेज़ ग्यात्सो जब एक लामा गोमछेन के निकट शिष्य बनने के लिए प्रार्थी हुआ तो वह 'सुगम-मार्ग' के सिद्धान्तों से एकदम अपरिचित नहीं था। अपने जीवन के कई साल उसने निर्जन एकान्त-वास में बिताये थे। उसने अपने आप अपनी कई शङ्काओं का निवारण कर लिया था। बस, केवल एक प्रश्न का उत्तर वह न पा सका था। मस्तिष्क क्या है?—उसके लिए यही एक ऐसी ग्रन्थिमयी माया थी, जिसकी गुत्थी सुलझाने में वह असमर्थ था। उठते-बैठते, सोते-जागते वह इसी उधेड़-बुन में पड़ा रहता किन्तु वह चपल वस्तु उससे उसी तरह दूर भाग जाती थी जैसे किसी छोटे बच्चे की मुट्ठी में से पानी, जो उसे अपने हाथ में बन्द करके रखना चाहता हो।

येशेज़ को अशान्त देखकर, उसके गुरु ने उसे अपनी जान-पहचान के एक लामा गोमछेन के पास जाने की अनुमति दी। यात्रा बहुत लम्बी न थी। केवल तीन सप्ताह का सफ़र था, जो तिब्बतियों के विचारानुसार कुछ नहीं था। लेकिन रास्ता एक बड़े रेगिस्तान और अट्ठारह-अट्ठारह हज़ार फुट की ऊँचाई के पहाड़ों पर से होकर था। येशेज़ तैयार हो गया। जौ का थोड़ा सा आटा, मक्खन, चाय आदि सामान लेकर उसने अपनी गठरी बाँधी और चल पड़ा।

मार्च का महीना था जब तिब्बत में ख़ूब ज़ोरों की बर्फ़ गिरती रहती है। येशेज़ ग्यात्सो को यह बाधा भी न रोक सकी।

एक रोज़ शाम को येशेज़ लामा गोमछेन के रितोद् के सामने जाकर खड़ा हुआ। उसका भेस देखकर शिष्यों ने जान लिया कि यात्री कहीं दूर से आ रहा है। उन्होंने उसे बैठाया। येशेज़ ने अपनी गठरी पीठ पर से उतारी और उसे ज़मीन पर रख दिया। रखते ही बोला—"लामा गोमछेन यदि भीतर

हों तो मेरे आने की सूचना उन्हें देनी चाहिए। मुझे उनसे कुछ काम है।"

लामा गोमछेन ने उसे अपने रहने के कमरे के पास तक नहीं फटकने दिया। येशेज़ को इस पर थोड़ा भी आश्चर्य नहीं हुआ। वह जानता था कि पहले परीक्षा देनी पड़ती है। कठिन से कठिन परीक्षा के लिए वह प्रस्तुत भी था। उसने गोमछेन के निवास-स्थान से अलग ही एक शिष्य की कुटिया में उसका आतिथ्य ग्रहण किया।

एक सप्ताह बीत जाने पर डरते-डरते येशेज़ ने गोमछेन को फिर अपने बारे में याद दिलाने के लिए ख़बर करवाई। उत्तर मिला तो तुरन्त, पर बड़ा टेढ़ा। येशेज़ को आज्ञा मिली तुरन्त रितोद छोड़ दे और अपने आश्रम को वापस लौट जाय।

येशेज़ के लिए आज्ञा-पालन के अतिरिक्त दूसरा चारा न था। उसने वहीं से पहाड़ी के ऊपर स्थित गुरु के आश्रम को, ज़मीन तक नत होकर, प्रणाम किया और वापस लौटा।

उसी दिन साँझ को एक बड़ा बर्फ़ीला तूफ़ान आया। येशेज़ रास्ता भूल गया। उसी रात को उसके पास का खाने का सब सामान भी चुक गया। भूखा, प्यासा और हताश रोगी सा वह किसी तरह अपनी गुम्बा तक वापस लौटा।

पर उसने हिम्मत न हारी। उसने अपने मन को समझाया कि पहले-पहल किसी बड़े काम के होने में भूत-प्रेत इसी प्रकार बाधाएँ पहुँचाया करते हैं।

उसने फिर दूसरी बार यात्रा की। फल पहली बार से अच्छा न रहा। लामा गोमछेन ने उसे अपने पैरों में प्रणाम करने की अनुमति नहीं दी और फिर वापस लौटा दिया।

येशेज़ ने अपना हठ न छोड़ा। दूसरे वर्ष उसने दो बार फिर प्रयत्न किया। तीसरी बार जब वह गोमछेन के पास पहुँचा तो उसे लामा ने बहुत बुरा-भला कहा। उसे पागल बताया। लेकिन येशेज़ ने धैर्य न छोड़ा। कहते हैं, अन्त में येशेज़ ग्यात्सो लामा गोमछेन का शिष्य होकर ही रहा और आगे चलकर अपने गुरु का सबसे प्रिय शिष्य हुआ।

एक दूसरे हठीले शिष्य की कथा इससे भी विचित्र है। वह अपने ढङ्ग की एक ही है।

कर्मा दोर्जे का जन्म एक नीच कुल के घराने में हुआ था। एक गेयोक* की हैसियत से उसने छुटपन में ही एक विहार-संघ में प्रवेश किया था। जाति-वर्ण में ऊँचे कुटुम्बों के उसके साथी बड़े तिरस्कार-पूर्ण भाव से उसकी हँसी उड़ाया करते थे। कर्मा दोर्जे ने मुझे बतलाया कि उसने ८ वर्ष की उम्र में ही इन लोगों को किसी न किसी तरह नीचा दिखाने की प्रतिज्ञा कर ली थी।

बड़े होने पर अपने इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उसे एक ही उपाय सूझ पड़ा। उसने मन ही मन ठान लिया कि किसी दिन वह प्रसिद्ध नालजोर्पा (जादूगर) होगा। उसके हाथ में अद्भुत शक्ति होगी। अपने भूतों और डाकिनियों की सहायता से वह एक बार अपने सब दुश्मनों को मज़ा चखा देगा। अगर वे उसके सामने खड़े होकर काँपते हुए हाथों से माफ़ी न माँगें तो उसका नाम कर्मा दोर्जे नहीं। बस, बस, उसे ठीक उपाय सूझ गया है और वह जादूगरी सीखकर ही रहेगा।

---

* नया चेला, जिसके ग़रीब माता-पिता उसका खर्च नहीं चला सकते और उसे अपने लिए किसी लामा के यहाँ कोई काम करना-धरना होता है।

कर्मा दोर्जे ने अपनी गुम्बा छोड़ दी और एक ओर कहीं जंगलों में निकल गया। एक ऊची पहाड़ी पर पहुँचकर एक सोते के निकट उसने रेसक्यांग्पा* लोगों की नक़ल करने के लिए अपने सब कपड़े उतार फेंके और बड़े-बड़े बाल बढ़ा लिये। आस-पास के लोग, जो उसे कभी कभी कुछ सामान देने आ जाया करते थे, जाड़ों में भी कर्मा को उसी प्रकार पालथी मारे नंगे-बदन ध्यानस्थ देखा करते थे।

कर्मा दोर्जे थोड़ी-बहुत जादूगरी जानता था। उसको यह भी पता था कि उसे अपने लिए एक योग्य गुरु की आवश्यकता है, लेकिन भूत प्रेत आदि में उसका बहुत बड़ा विश्वास था। उसे मिलारेस्पा की जीवनी का हाल मालूम था, जिसने इन्हीं की सहायता से एक बार अपने शत्रुओं के ऊपर एक पूरा का पूरा मकान ही गिरा दिया था। उसने एक क्यिलक-होर (जादू का चौक) खींचा और उसी पर ध्यान गड़ाकर इस आशा में बैठ गया कि तौवा लोग स्वयं प्रकट होकर उसे एक योग्य गुरु के पास तक पहुँचा देंगे।

सातवें रोज़ रात को एकाएक पास के पहाड़ी सोते में बहुत सा पानी भर गया और वह बढ़ चला। उसके उस तेज़ प्रवाह में कर्मा, कर्मा का क्यिलक-होर और जो कुछ उसका थोड़ा-बहुत सामान था वह सब का सब बह गया। भाग्यवश कर्मा डूबते-डूबते बचा। जल के प्रवाह के साथ बहता-बहता कर्मा एक घाटी में लगा जहाँ जाकर सोता समाप्त होता था।

---

* वे नालजोर्पा जो त्यूमो की विद्या जानते हैं। ख़ाली एक पतला सूती कपड़ा 'रेस क्यांग' पहनते हैं या एकदम नंगे-बदन ही रहते हैं। देखिए छठा अध्याय।

कर्मा दोर्जे ने अपने सामने एक साफ़ स्वच्छ रितोद् (आश्रम) देखा। उसके मन में इस बात का रत्ती भर भी सन्देह न रह गया कि तौवों को उसके सामने प्रकट होने का साहस तो न हो सका, लेकिन उन्होंने इस दैवी ढंग से उसे एक योग्य गुरु के पास पहुँचा दिया है। अवश्य ही इस रितोद् में जो लामा रहता है वही उसका गुरु होने की क्षमता रखता है।

यहीं पर यह बता देना ठीक होगा कि इस रितोद् में और कोई नहीं; एक साधारण, सभ्य-समाज से सम्बन्ध रखनेवाले बूढ़े लामा रहते थे। वे स्वभाव से एकान्तप्रिय थे और बौद्ध-धर्म-ग्रन्थों के अनुसार 'ग्राम से नातिदूर और नातिसमीप' एक छोटा सा घर बनाकर अपने दो एक शिष्यों के साथ अलग रहते थे। उनके पास उनकी थोड़ी-बहुत पुस्तकें थीं। उनका जीवन साधारण सा था। जादूगरी की मन्त्र-विद्या और ऐन्द्रजालिक नालजोर्पाओं से उनका किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं था।

कर्मा दोर्जे सीधा रितोद् में पहुँचा। उसने बाहर हवा में टहलते हुए कुशोग तोञ्सग्येस को बड़ी श्रद्धा से साष्टांग प्रणाम किया। फिर बड़े ही विनम्र स्वर में उसने उनसे अपने शिष्य बना लेने की प्रार्थना की।

वृद्ध लामा ने उसे अपनी सब कथा—क्यिल्कहार की बात और 'दैवी' बाढ़ का हाल—ज्यों की त्यों कह लेने दी। पर कर्मा के बार-बार यह कहने पर कि वह "दैवी" ढङ्ग पर उनके श्री-चरणों के समीप तक पहुँचाया गया है, उन्होंने उसे यह बतला देना आवश्यक समझा कि वह जगह जहाँ वह बहते-बहते पहुँचकर रुका था, उनके "श्री-चरणों" से काफ़ी दूरी पर थी। उन्होंने कर्मा दोर्जे से उसके इस प्रकार नंगे-बदन रहने की वजह भी पूछी।

अपने इस अनोखे शिष्य के बारे में जो कुछ पूछना-ताछना था वह सब समझ-बूझकर कुशोग् चुप हो गये। कुछ क्षण के बाद उन्होंने अपने एक नौकर को बुलाकर उसे समझा दिया कि इस बेचारे को रसोईघर में ले जाओ और इसे अँगीठी के पास बैठाकर ख़ूब गरमागरम चाय पिलाओ। इसके लिए एक पुराने बालदार (फ़र के) कोट का भी प्रबन्ध कर दो। यह आदमी बराबर दो साल से जाड़े में ठिठुरता आ रहा है।

कर्मा दोर्जे अपने भड़कीले 'पागतसा' (भेड़ की खाल) को पहनकर बहुत ख़ुश हुआ; लेकिन उसे इस बात का बड़ा अफ़सोस रहा कि उसके गुरु ने उसका ऐसे ढङ्ग से स्वागत नहीं किया, जैसा कि "दैवी ढङ्ग" से पहुँचाये गये एक शिष्य का होना चाहिए था। उसने गोमछेन से फिर मिलकर उन्हें अच्छी तरह अपने बारे में बता देना और यह समझा देना कि वह गुरु से क्या क्या आशा रखता है, बहुत आवश्यक समझा। पर इसकी नौबत ही नहीं आई। वृद्ध लामा का साफ़-साफ़ आदेश उसे 'केवल हर तरह आराम से रखने' का था। लाचार होकर कर्मा चुप रहा। अभी उसके गुरु की यही मर्ज़ी थी। अब उसके सन्तोष के लिए केवल दो बातें रह गई थीं। कभी-कभी छज्जे पर कुशोग् आकर बैठ जाते थे, उनकी एक झलक पा लेना और जब कभी वे अपने अन्य शिष्यों को किसी धार्मिक सूत्र की व्याख्या समझाने लगते थे तो उसे सावधान होकर सुनना।

इसी प्रकार एक साल से कुछ ऊपर बीत गया। अब कर्मा धीरे-धीरे निराश होने लगा। वह बड़ी प्रसन्नता से सब प्रकार की मुसीबतों को झेलने और कठिन से कठिन परीक्षा देने को तैयार था पर इस प्रकार चुपचाप अकर्मण्य बनकर आराम से पड़े रहना उसे बड़ा बुरा लगने लगा। पर अब भी उसका यही विश्वास था कि

दैवी शक्तियाँ उसे यहाँ तक ले आई थीं और इस वृद्ध पुरुष के अतिरिक्त संसार का कोई व्यक्ति उसका गुरु नहीं हो सकता था। यही नहीं, कभी-कभी घबराकर कर्मा दोर्जे आत्महत्या तक की बात भी सोचने लगता।

इसी बीच में उसके गुरु के रितोद् में उसका एक भतीजा पहुँचा। भतीजा किसी बड़ी गुम्बा का लामा तुल्कु था। उसके साथ-साथ उसके और भी नौकर-चाकर थे और वह बड़े ठाठ-बाट से आया था। उसकी निगाह एक रोज़ कर्मा पर भी पड़ी। उसने उससे पूछा कि वह दिन भर अँगीठी के पास आलसियों सा क्यों पड़ा रहता है और कोई काम-धाम नहीं करता।

कर्मा दोर्जे प्रसन्नता से पागल हो उठा। अन्ततः उसके भाग्य फिरे। शायद अब उसके ऊपर देवताओं की कृपा-दृष्टि हुई है और उन्होंने इस लामा तुल्कु के रूप में उसका एक सच्चा हितैषी भेजा है।

उसने साफ़-साफ़ अपना सारा कच्चा चिट्ठा लामा तुल्कु से कह सुनाया और उससे अपने चाचा से सिफ़ारिश कर देने की प्रार्थना की।

इसके बाद बहुत दिनों तक कुछ नहीं हुआ और वह दिन भी आया, जब लामा तुल्कु अपनी गुम्बा को वापस लौटने की तैयारी करने लगा। कर्मा का दिल बैठ गया। उसकी प्रार्थना पर तुल्कु ने भी ध्यान नहीं दिया। चचा-भतीजे दोनों एक से निकले......पर जाने के पहले लामा तुल्कु ने कर्मा दोर्जे को अपने पास बुलाया और कहा,—"देखो, मैंने कुशोग रिम्पोछे से तुम्हारे बारे में ज़िक्र किया था। उन्होंने उत्तर दिया है कि जिस जादू-गरी की विद्या को तुम सीखना चाहते हो उसकी किताबें उनके रितोद् में नहीं हैं। इस विषय की बहुत सी पुस्तकें हमारी गुम्बा

छठा अध्याय

इच्छा-शक्ति और उसका प्रयोग

लङ्-गोम्-पा

'लङ्-गोम्' समस्त शब्द के अन्तर्गत तिब्बती लोगों के प्राणायाम से सम्बन्ध रखनेवाले ऐसे बहुत से अभ्यासों का अन्तर्भाव हो जाता है, जो शारीरिक और आध्यात्मिक उन्नति के लिए बड़े उपयोगी सिद्ध हुए हैं।

लङ्-गोम् के अभ्यासों से भिन्न-भिन्न प्रकार की शक्तियाँ प्राप्त होती हैं, यद्यपि लङ्-गोम् शब्द का प्रयोग अब एक विशेष अभ्यास के लिए होता है जो शरीर में एक आश्चर्यजनक स्फूर्ति और हल्का-पन ला देता है और लङ्-गोम्-पा मिनटों में कोसों की खबर लेता है।

इस प्रकार की एक विद्या की सचाई और उसकी करामातों में तिब्बतियों का विश्वास बहुत पुराने समय से रहा है और हमें अनेक प्रचलित कहानियों में वायुवेग से जानेवाले लामाओं का उल्लेख मिलता है। मिलारेस्पा स्वयं ऐसी शक्तियों की डींग मारता है और बतलाता है कि कैसे उसने उसी फ़ासले को जिसे तै करने में उसे क़रीब-क़रीब एक महीना लग गया था इस विद्या को सीखने के बाद केवल कुछ दिनों में समाप्त किया था। इस अद्भुत शक्ति का कारण वह प्राण-वायु पर पूर्ण अधिकार बतलाता है। इसमें किसी को सन्देह नहीं हो सकता कि यह काम बहुत ही कठिन है और वास्तव में सच्चे लङ्-गोम्-पा बहुत ही इने गिने लामा होते हैं। सभी तिब्बती यात्राओं में सदैव भाग्य ने मेरा साथ दिया है।

लङ्-गोम्-पा जैसे विचित्र दौड़ाक को अपनी आँखों से देख सकने की मेरी प्रबल इच्छा भी पूरी होने से बची नहीं रही और संयोगवश मुझे इस विद्या के एक-दो नहीं, बल्कि तीन-तीन ज्ञाता देखने को मिले।

पहले लङ्-गोम्-पा से मेरी भेंट उत्तरी तिब्बत के चांग थांग* में हुई।

गोधूलि की वेला थी। यौङ्डेन, मैं और मेरे नौकर एक चौड़े ऊसर मैदान को पार कर रहे थे। अकस्मात् बड़ी दूर पर क्षितिज में अपने ठीक सामने किसी हिलती हुई काली चीज़ पर मेरी निगाह पड़ी। दूरबीन से देखने पर पता चला कि कोई आदमी है। लेकिन आदमी इतनी तेज़ी से भला कैसे चल सकता है। मुझे बहुत अचम्भा हुआ और फिर इन निर्जन प्रदेशों में किसी से यात्रा में भेंट हो जाना असम्भव सी बात थी। आदमी अकेला था। उसके पास कोई जानवर भी नहीं था। यह यात्री हो कौन सकता है? मैं आश्चर्य में पड़ गई।

मेरे एक नौकर ने कहा कि शायद कोई भटका हुआ यात्री हो जो अपने जत्थे के साथियों से बिछुड़कर अलग जा पड़ा है। पर मैं बराबर उस आदमी को दूरबीन से देखती रही। सबसे अधिक आश्चर्य मुझे उसकी उस ग़ज़ब की चाल पर हो रहा था, जिससे वह तेज़ी के साथ आगे बढ़ता हुआ चला आ रहा था। मैंने नौकर के हाथ में दूरबीन दे दी। उसने भी देखा और देखते ही चिल्ला पड़ा—"लामा लङ्-गोम्-पा चोग् दो" अर्थात् यह तो कोई लामा लङ्-गोम्-पा मालूम होता है।

---

* एक लम्बा-चौड़ा और ऊँचा ऊसर मैदान जिसमें सिर्फ़ थोड़े से ख़ानाबदोश ख़ेमों में रहते हों। चांग थांग का असली मतलब है "उत्तरी मैदान"; लेकिन अब यह शब्द किसी भी बड़े ऊसर मैदान—जो उत्तरी तिब्बत के मैदानों की तरह हो—के अर्थ में प्रयुक्त होता है।

लामा लङ्-गोम्-पा—इन शब्दों ने मुझे एकदम चौकन्ना कर दिया। इन लोगों के बारे में मैंने पहले से ही बहुत कुछ सुन रक्खा था और थोड़ा-बहुत इनके शिक्षा-सिद्धान्तों से भी परिचित थी, लेकिन मैंने कभी अपनी आँखों से इन लोगों के करिश्मे नहीं देखे थे। मैं ख़ुशी के मारे नाच उठी। क्या सचमुच आज मेरी बरसों की इच्छा पूरी होगी। अगर यह आदमी सचमुच ही लङ्-गोम्-पा हुआ तो मुझे क्या करना होगा? .....मैं उसे रोक-कर उससे कुछ बातें करूँगी। उसे और पास से देखूँगी, और उसका चित्र लूँगी...बहुत कुछ करूँगी। पर जैसे ही मैंने अपने मन की इच्छा प्रकट की, वैसे ही मेरा वही नौकर चिल्ला पड़ा—"माँजी! आप इस लामा को रोकने का या उससे बातचीत करने का बिल्कुल विचार न कीजिएगा। यात्रा करते समय ये लङ्-गोम-पा लामा गहरी समाधि की अवस्था में होते हैं। समय से पहले ध्यान टूट जाने से ङाग् का जाप करते-करते ये रुक जाते हैं। इनके भीतर जो देवता आया रहता है, वह भाग जाता है और ऐसी दशा में फिर इन बेचारों के प्राणों पर ही आ बनती है।"

इतने में लामा लङ्-गोम्-पा बिल्कुल ही निकट आ गया। हमने देखा, उसकी मुख-मुद्रा शान्त और स्थिर थी। उसके नेत्र दूर किसी निस्सीम प्रदेश में निरुद्देश्य भाव से ताक रहे थे। वह दौड़ नहीं रहा था। ऐसा मालूम पड़ता था जैसे वह धरातल को छूता हुआ भागा चला जा रहा है और कूदता हुआ आगे बढ़ रहा है। उसके पैरों में रबड़ के गेंद की सी लोच था। हर बार जब उसके पैर पृथ्वी को छूते थे, तब वह दुगने ज़ोर के साथ आगे को ठिल सा उठता था। वह एक हाथ से अपना लम्बा कुर्ता सँभाले हुए था और उसके दूसरे हाथ में फुर्बा था।

वह जब हम लोगों के सामने से होकर निकला तो मेरे नौकर अपने-अपने खच्चरों पर से नीचे उतर पड़े। सबने सर झुकाकर उसे प्रणाम किया। लेकिन लामा लङ्-गोम्-पा अपने रास्ते पर उसी तेज़ी के साथ बढ़ता चला गया। शायद उसने हम लोगों में से किसी को देखा भी नहीं।

इसके चौथे रोज़ सबेरे हम लोग थेब्-ग्याई प्रान्त की सरहदी सीमा पर पहुँचे जहाँ कि कुछ चरवाहे डेरे डाले पड़े थे। इन लोगों से बातें करने पर पता चला कि जिस दिन लामा लङ्-गोम्-पा से हमारी भेंट हुई थी उसके ठीक एक रोज़ पहले सन्ध्या समय पशुओं को इकट्ठा करते हुए एक डुम्पा (चरवाहे) ने भी उसे उसी तरह जाते हुए देखा था। मैंने इससे कुछ अनुमान लगाने की कोशिश की। दिन भर में जितने घण्टे हम सफ़र करते रहे थे—जानवरों की रफ़्तार, अपने सुस्ताने और ख़ेमे उखाड़ने के समय को निकालकर, सब जोड़-जाड़कर—हिसाब लगाया तो इसी परिणाम पर पहुँची कि चारों दिनों तक वह लामा उसी चाल से बिना कहीं रुके हुए रात-दिन बराबर चलता रहा है।

तिब्बती लोग अपने पैरों से बहुत काम लेते हैं। चौबीस घंटे तक बराबर चलते रहना इन लोगों की समझ से कोई अनहोनी बात नहीं है। लामा योङ्गदेन और मैं स्वयं—दोनों चीन से ल्हासा आते समय कभी कभी बराबर १९ घण्टे तक बिना कहीं रुके या सुस्ताये हुए चले हैं। एक बार तो हमें देब् दर्दा को पार करने के लिए घुटनों तक जमी हुई बर्फ़ में चलना पड़ा था। फिर हमारी सुस्त चाल को लामा लङ्-गोम्-पा की तेज़ चाल से क्या तुलना ?

और फिर वह लामा कोई थेब्ग्याई से ही तो आ नहीं रहा था। उसने कहाँ से चलना आरम्भ किया था और वह कहाँ जाकर रुकेगा, यह सब मुझे कुछ भी ज्ञात न था। कुछ चरवाहों ने

बतलाया कि सम्भव है, वह त्सांग से आ रहा हो; क्योंकि त्सांग प्रान्त में ऐसे कई विद्यापीठ थे जहाँ लङ्-गोम् की शिक्षा का सुव्यवस्थित प्रबन्ध था। पता नहीं कि असलियत क्या थी।

यह संयोग ही था कि मुझे दूसरी बार, सुदूर पश्चिम के शेत्युआनेज़ के स्वतन्त्र सूबे में, एक और लङ्-गोम्-पा की झलक देखने को मिल गई। पर इस बार उसे चलते हुए देखने का मौक़ा नहीं मिला था।

हम लोग एक जङ्गल को पार कर रहे थे। हम और यौङ्देन आगे-आगे थे और नौकर-चाकर पीछे। एकाएक एक मोड़ पर मुड़ते ही हमने अपने सामने एक आदमी को देखा जो एकदम नग्न था। उसके शरीर में तमाम लोहे की ज़ंजीरें पड़ी हुई थीं। वह एक चट्टान पर बैठा हुआ कुछ सोच रहा था। अपने विचारों में वह ऐसा डूबा हुआ था कि हम लोगों के पास पहुँचने पर भी उसे कुछ ख़बर न हुई। हम लोग आश्चर्य में आकर ठिठक गये। लेकिन उस आदमी के विचारों का ताँता शायद टूट गया; क्योंकि उसकी दृष्टि हम लोगों पर पड़ी और वह हम लोगों को देखते ही बड़ी तेज़ी के साथ कूदकर एक झाड़ी में छिप गया। कोई हिरन वैसी छलाँग क्या मारेगा। थोड़ी देर तक उसकी ज़ंजीरों के झन्-झन् बजने की आवाज़ आती रही, फिर वह भी बन्द हो गई।

"लङ्-गोम्-पा है, लङ्-गोम्-पा", यौङ्देन ने मुझसे कहा—"मैंने इसी तरह के एक आदमी को और भी देखा है। ये लोग अपने को भारी करने के लिए गले में ज़ंजीरें डाल लेते हैं; क्योंकि कभी-कभी उनके हवा में उड़ जाने तक का भय रहता है।"

पूर्वी तिब्बत में एक और लङ्-गोम्-पा से मेरी भेट हुई। इसे मैंने खामे प्रांत के एक भाग—'गा'—में देखा था। इस बार भी हम

अपने छोटे क़ाफ़िले के साथ सफ़र कर रहे थे। कुछ दिन चलते रहने के बाद एक आरजोपा भी अपनी छोटी गठरी लेकर हमारे साथ हो लिया था। ये लोग ग़रीब यात्री होते हैं जो माँगते-खाते चल पड़ते हैं और रास्ते में अगर किसी क़ाफ़िले का साथ हो गया तो उसी में शामिल हो जाते हैं। मौक़े-बेमौक़े ये नौकरों के काम में हाथ बँटा लेते हैं जिससे नौकर-चाकर भी ख़ुश हो जाते हैं और मालिक की भी चापलूसी हो जाती है। लोग इनकी हालत पर तरस खाकर इन्हें भी कुछ न कुछ खाने के लिए दे देते हैं।

हज़ारों आरजोपा इसी प्रकार तिब्बत के व्यापारिक मार्गों पर क़ाफ़िलों के साथ लगे हुए देखे जाते हैं। हमने भी अपने इस नये साथी की ओर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया। इस बात का पता हमें ज़रूर चला कि वह खाम की पावोंङ् गुम्बा में रहता था और त्सांग प्रान्त को जा रहा था। रास्ता काफ़ी लम्बा था और हम सोचते थे कि इस तरह से माँगता-खाता हुआ पैदल चलकर तो वह अपने गन्तव्य स्थान तक तीन-चार महीने में भी नहीं पहुँच सकेगा।

जिस दिन यह आरजोपा हमारे क़ाफ़िले में आ मिला उसके तीसरे रोज़ मैं और एक नौकर बाक़ी लोगों का साथ छोड़कर कुछ आगे बढ़ गये थे। अपने खाने-पीने के लिए कुछ सामान भी हमारे साथ ही था। हम लोग शाम को एक जगह पर रुककर और लोगों के आ जाने की प्रतीक्षा करने लगे। चाय पी और गोश्त पकाने के लिए कण्डे बटोरने लगे। एकाएक मैंने उसी आरजोपा को कुछ दूर पर तेज़ी के साथ अपनी ओर आते देखा। उसके और पास आ जाने पर मैंने साफ़-साफ़ देखा कि वह उसी विचित्र प्रकार से कूदता हुआ आगे बढ़ रहा है जिस तरह से मैंने थेब्ग्याई के लामा लङ्-गोम्-पा को जाते हुए देखा था।

हमारे पास तक पहुँचकर आरजोपा बड़ी देर तक अपने सामने ताकता हुआ चुपचाप खड़ा रहा। वह हाँफ नहीं रहा था। ऐसा अलबत्ता मालूम पड़ रहा था जैसे वह अर्द्धमूर्च्छितावस्था में हो। उसमें कुछ बोलने की या हिलने-डुलने की उस समय बिल्कुल शक्ति न थी। ख़ैर, थोड़ी देर के बाद उसका ध्यान टूटा और वह अपने आपे में आ गया। पूछने पर उसने बतलाया कि पाबोंग की गुम्बा में वह एक गोमछेन से लङ्-गाम् की विद्या सीख रहा था पर गोमछेन के बीच ही में वहाँ से कहीं चले जाने पर अब वह त्सांग की शालू गुम्बा में शिक्षा पूरी करने जा रहा था।

उसने मुझे और कुछ नहीं बतलाया और शाम तक वह बहुत उदास सा रहा। बाद को उसने यौङ्ग्देन से बता दिया था कि वह अपने आप न जाने कब ध्यानस्थ हो गया था। और सचमुच इसके असली कारण पर वह मन ही मन बहुत लज्जित था।

बात यह थी कि हमारे नौकर और ख़च्चरों के साथ चलते-चलते आरजोपा बेसब्र हो गया था। इनकी उस सुस्त चाल पर वह बेतरह खीझ गया था। सोचते-सोचते उसका ध्यान हमारी ओर भी गया। उसने मन ही मन सोचा कि इस समय हम लोग चाय पीकर मज़े से बैठे होंगे। शायद गोश्त भी उड़ रहा हो। यही बातें सोचते-सोचते वह अपने आपको और अपने आस-पास की चीज़ों को भूल गया। उसकी कल्पना-शक्ति अच्छी थी। उसने साफ़-साफ़ आग पर पकते हुए गोश्त को देखा और उसके मुँह में पानी भर आया। चट उसने अपने लम्बे-लम्बे क़दम बढ़ाने शुरू किये और ऐसा करने में जिस विशेष तेज़ चाल से चलने का वह अभ्यास कर रहा था, उसी के अनुकूल उसके पैर अपने आप जल्दी-जल्दी उठने लगे। और ऐसा हो जाने पर, जैसी कि उसकी आदत पड़ी हुई थी, सीखे हुए मन्त्रों का उच्चारण

भी करना उसने शुरू कर दिया। फिर प्राणायाम के द्वारा श्वास-वायु को ठीक करने का नम्बर आया और आरजोपा लङ्-गोम् की अन्तिम अवस्था यानी समाधि की दशा में पहुँच गया। पर अपने ध्यान में भी उसे पकते हुए गोश्त का ख़याल बराबर बना रहा था।

लङ्-गोम्-पा को अपने इस पाप-कृत्य पर सचमुच बड़ा पश्चात्ताप हुआ। पवित्र मन्त्रों और लङ्-गोम् के अभ्यासों को अपने पेटूपन का साधन बना लेने पर उसे बड़ी लज्जा हुई। इतनी लज्जा हुई कि दूसरे दिन सबेरे जब हम सोकर उठे तो उस आरजोपा का हमारे जत्थे भर में कहीं पता न था।

ऊपर मैं बता चुकी हूँ कि त्सांग प्रान्त की गुम्बाएँ लङ्-गोम्-पा की शिक्षा के लिए मशहूर हैं। यहाँ पर मैं एक ऐसी घटना दे रही हूँ जिसकी वजह से शालू गुम्बा में ख़ास तौर से इसी विद्या की पढ़ाई होती आई है।

कहानी के पात्र हैं दो बड़े-बड़े लामा—यङ्तोन दोर्जेपाल जादूगर और प्रसिद्ध इतिहासकार बुस्तों। कहते हैं, एक बार यङ्तोन ने शिन्जे (यमराज) को अपने अधीन करने के लिए एक डबथब् करना आरम्भ किया। यह देवता रोज़ अपनी भूख मिटाने के लिए एक प्राणी की जीवन-लीला समाप्त करता रहता है। इस क्रूर काण्ड को समाप्त करने के लिए ही लामा जादूगर ने अपना अनुष्ठान पूरा करने का सङ्कल्प किया था। बुस्तों को भी इसकी सूचना मिली लेकिन उसे विश्वास न हुआ कि उसका मित्र किसी प्रकार से इतने भयङ्कर देवता को अपने वश में ला सकता है। तीन और लामाओं के साथ वह उसी दिन यङ्तोन के यहाँ चल दिया।

वहाँ पहुँचकर वह देखता क्या है कि सचमुच शिन्जे उसके मित्र के आगे हाथ बाँधे खड़ा है। उसका 'भयङ्कर आकार इतना

बड़ा था जितना कि आकाश और उसकी लपलपाती हुई जीभ खुले हुए मुँह से बाहर लटक रही थी। जादूगर ने बतलाया कि शिन्जे उसके क़ाबू में आ गया है, लेकिन उससे पक्का वादा लेने के लिए किसी एक लामा का अपने प्राणों का मोह त्याग करके उसको भेंट चढ़ना आवश्यक था। यह सुनकर और लोग तो चुपके से वहाँ से नौ दो ग्यारह हुए लेकिन बुस्तों ने कहा कि अगर उसकी अपनी एक जान जाने से असंख्य जीवों की प्राण-रक्षा होती हो तो वह ख़ुशी-ख़ुशी शिन्जे की भेंट चढ़ जायगा।

परन्तु उसके मित्र ने जवाब दिया कि उसकी अपनी विद्या में ही इतना बल था कि वह बग़ैर अपने दोस्त की जान लिये हुए शिन्जे का पेट भर सके। लेकिन हाँ, बुस्तों और उसके बाद उसके उत्तराधिकारियों को हर बारहवें साल इस अनुष्ठान को विधिवत् पूरा करने का ज़िम्मा लेना होगा। बुस्तों ने स्वीकार कर लिया और यङ्तान दोर्जपाल ने बहुत सी जादू की बत्तखें बनाकर उन्हें शिन्जे के खुले मुख में झोंककर उसे बन्द कर दिया। तभी से बुस्तों के बाद बराबर आज तक शालू गुम्बा के अवतारी लामा हर बारहवें साल शिन्जे को प्रसन्न रखने के लिए इस पूजा को करते चले आ रहे हैं। पर मालूम होता है जैसे-जैसे समय बीतता गया वैसे-वैसे शिन्जे के साथियों की संख्या भी बढ़ती चली गई; क्योंकि अब तो शालू लामा उक्त अवसर पर बहुत से दानवों को आमन्त्रित करते हैं।

इन दानवों को एक जगह पर इकट्ठा करने के लिए एक तेज़ हरकारे की ज़रूरत पड़ती है। यह हरकारा 'महेकेताङ' कहलाता है। मालूम होता है कि शिन्जे की सवारी के भैंसे 'महे' से यह नाम पड़ा है।

न्याङ् तोद् क्यिद् फुग या सामदिङ् के भिक्षुओं में से ही कोई एक व्यक्ति इस काम के लिए चुन लिया जाता है। जिनकी 'महेकेताङ्' बनने की इच्छा होती है उन्हें पहले ऊपर बतलाई गई किसी एक गुम्बा में इसकी विधिवत् शिक्षा प्राप्त करनी पड़ती है। तीन साल तीन महीने तक बराबर एक घोर अन्धकार-पूर्ण एकान्त स्थान में प्राणायाम से सम्बन्ध रखनेवाले कुछ अभ्यासों को सीखना होता है। तब इन लोगों की परीक्षा ली जाती है। इस परीक्षा में जिसे सबसे अधिक नम्बर मिलते हैं वही 'महेकेताङ्' बन सकता है। परीक्षा कई प्रकार से ली जाती है।

ज़मीन में एक गड्ढा खोदा जाता है जिसकी गहराई परीक्षार्थी की ऊँचाई के बराबर होती है। इस गड्ढे के ऊपर एक प्रकार का गुम्बद बनाया जाता है जिसकी ऊँचाई भी धरातल से आदमी की ऊँचाई के बराबर होती है। गड्ढे के भीतर बैठे हुए आदमी के पास से ऊपर गुम्बद के सिरे तक की ऊँचाई आदमी की ऊँचाई की दुगुनी हुई यानी अगर आदमी ५ फ़ीट ५ इंच लम्बा हुआ तो गड्ढे के नीचे से लेकर ऊपर गुम्बद के सिरे तक की नाप १० फ़ीट १० इञ्च होती है। इस गुम्बद के सिरे पर एक छोटी सी जगह खुली छोड़ दी जाती है। नीचे गड्ढे में आदमी पालथी मारकर बिठा दिया जाता है। अब वह इस बात की कोशिश करता है कि पालथी मारे हुए और बैठे-बैठे कूदकर वह उसी खुली जगह से उचककर बाहर निकल जाय।

मैंने सुना है कि इस प्रकार की कलाबाज़ी सचमुच इस देश में सफलतापूर्वक की जाती है, लेकिन मैंने अपनी आँखों से एक बार भी नहीं देखी।

पर यह परीक्षा बिलकुल शुरू-शुरू की हुई। अन्तिम परीक्षा इससे कठिन रक्खी गई है।

तीन वर्ष तक अन्धकार पूर्ण एकान्तवास कर चुकने के पश्चात् वे साहसी शिष्य, जो अपने को परीक्षा में पूरे उतरने के योग्य समझते हैं, शाल्रू की ओर चल पड़ते हैं। वहाँ ऊपर बताये हुए गड्ढों में ये उसी प्रकार बिठा दिये जाते हैं। गड्ढों में वे सात दिन तक रहते हैं, फिर बाहर निकलते हैं। लेकिन शाल्रू में ऊपर की ओर नहीं बल्कि बग़ल की भीत में एक बहुत ही छोटा सा छेद रहता है। इस छेद की नाप परीक्षार्थी की दूसरी उँगली और अँगूठे के बीच में जितनी जगह आ सकती है, उसी के अनुसार रक्खी जाती है। उसे कूदने की भी ज़रूरत नहीं है। इतनी रियायत और कर दी जाती है कि परीक्षार्थी को एक स्टूल दे दिया जाता है। इसी पर चढ़कर उसे उस छोटे से छेद के बाहर रेंगकर निकल जाना होता है।

विद्वान् लामा लोग लङ्-गोम्-पा की विद्या को स्वीकार करते हैं और इसके अभ्यास से शरीर में आ जानेवाली तेज़ी और हल्केपन की भी तारीफ़ करते हैं। पर मालूम होता है वे इस हुनर की ज्यादा परवा नहीं करते। उनकी यह उदासीनता हमें भगवान् बुद्ध की जीवनी से सम्बन्ध रखनेवाली एक घटना की याद दिलाती है।

शाक्य-मुनि गौतम एक बार अपने शिष्यों के साथ एक जंगल को पार कर रहे थे। एक गुफा में कठिन तपस्या करते हुए एक साधु से उनकी भेंट हो गई। पता चला कि बराबर २५ साल से वह उस गुफा में उसी प्रकार तपस्या करता चला आ रहा है।

"पर भाई मेरे, इस लम्बी और कड़ी तपस्या से तुम्हें लाभ क्या हुआ है?" भगवान् ने उससे पूछा।

"मैं जिस नदी को चाहूँ उस पर खड़ाऊँ पहने हुए जल पर चलकर पार कर सकता हूँ।" गर्व में आकर तपस्वी ने कहा।

"आह, मेरे भोले संन्यासी! क्या सचमुच तुम इसी छोटी सी बात के लिए २५ साल से इतना कष्ट उठा रहे हो! एक मामूली सिक्के के बदले में माँझी तुम्हें इस पार से उस पार उतार देता।"

बिना आग के अपने को गरम करने की विधि

मालूम होता है, लाची खाङ् पर्वत में गुफा-वास करते समय जब मिलारेस्पा ने अपने आपको चारों ओर बर्फ़ से घिरा पाया और देखा कि अब उसका उसी गुफा में बरसात तक रुक जाना अनिवार्य्य हो गया है तो उसने भी इसी तदबीर से काम लिया था।

ऐसा होना असम्भव नहीं है। मिलारेस्पा कवि था और एक कवि की हैसियत से उसने इस अनुभव को अपनी एक कविता का विषय बना दिया, जिसके कुछ भाग का स्वतन्त्र अनुवाद यों है:—

इस संसार से खिन्न होकर
लाची खाङ् की कन्दराओं में मैंने शरण ली है।
आकाश और पाताल ने मिलकर
झंझा को अपना संदेश देकर मेरे पास भेजा है।
समीर और जल—इन तत्त्वों ने
दक्षिण-देश के काले बादलों से मैत्री की।
उन्होंने सूर्य्य और चन्द्र को बन्दी कर लिया।
छोटे नक्षत्रों को आकाश से भगाया,
और बड़ों को कुहरे में छिपा दिया।
और तब बराबर नौ दिन और नौ रात तक बर्फ़ गिरी।
सबसे बड़ी बौछारें, ऊपर से
चिड़ियों की भाँति उड़ती हुई नीचे आईं;

छोटी जो मटर और सरसों के दानों के बराबर थीं;
लुढ़कती और चक्कर मारती हुई गिरीं।
उस बार बर्फ़ खब ज़ोरों से गिरी।
बहुत ऊपर के पहाड़ी सोते ओलों से भर गये;
नीचे वनों में सब पेड़ नीचे से ऊपर तक ढँक गये।
घरों में आदमी बन्द हुए
पालतू जानवर भूख से मर गये
दरिन्दों और परिन्दों ने उपवास किया;
चूहे धरती के नीचे गड़े खज़ाने बन गये।
बर्फ़, सर्द हवा और मेरा पतला सूती कपड़ा—
इन तीनों में सफ़ेद पहाड़ों पर परस्पर एक युद्ध हुआ।
बर्फ़ मेरे शरीर पर पड़ते ही पिघलकर बह गई;
मेरे पतले सूती कपड़े में अग्नि की गरमी थी—
उसे छूकर गरजती हुई हवाएँ चुप हो गईं।
घण्टों तक यह तुमुल-युद्ध होता रहा
फिर मेरी विजय हुई।
मेरे पीछे आनेवाले अनेक संन्यासी हैं;
उनके लिए मैं 'त्यूमो' का यह महान् चमत्कार छोड़ता हूँ।

समुद्र से कोई १८००० फुट की ऊँचाई पर एक बर्फ़ीली गुफा में केवल एक पतला सूती वस्त्र* पहनकर या क़रीब-क़रीब बिल्कुल नंगे बदन सारा जाड़ा काट देना और फिर भी जीते बचे रहना कोई मामूली बात नहीं है। फिर भी अनेक तिब्बत-निवासी हर साल अपनी खुशी से इस कठिन कर्म में प्रवृत्त होते हैं। उनकी इस सहन-शक्ति का आधार वही 'त्यूमो' है जिसके चामत्कारिक गुणों की प्रशंसा ऊपर मिलारेस्पा ने स्वयं की है।

---

* रेसक्याङ्।

'त्यूमो' का शाब्दिक अर्थ होता है 'गरमी'। लेकिन तिब्बती भाषा में अब इस शब्द का व्यवहार इस साधारण गर्मी के अर्थ में नहीं किया जाता। त्यूमो का अभिप्राय एक विशेष प्रकार की अग्नि से समझना चाहिए जिसकी गरमी प्राणवायु में मिलकर समस्त शरीर में 'त्सा' अर्थात् नाड़ियों के द्वारा फैल जाती है।

एक बार इसकी शिक्षा आरम्भ हो जाने पर फिर फ़र या ऊन का कोई कपड़ा शरीर पर डालना और आग तापना एकदम मना है। इस विद्या का अभ्यास प्रतिदिन ब्राह्म मुहूर्त्त में उठकर प्रातःकाल किया जाता है। सूर्य निकल आने के पहले त्यूमो के ख़ास-ख़ास अभ्यास समाप्त हो जाने चाहिएँ, क्योंकि यह समय ध्यानस्थ होने के लिए सर्वथा उपयुक्त होता है। बाहर खुली हवा में केवल एक पतला सूती कपड़ा पहनकर या बिल्कुल वस्त्र-हीन होकर इसका अभ्यास किया जाता है।

शुरू-शुरू में बैठने के लिए एक चटाई की आसनी सबसे अच्छी होती है। टाट के टुकड़े या काठ के स्टूल का भी इस्तेमाल होता है। कुछ अभ्यास हो जाने पर शिष्य लोग योंही भूमि पर बैठ जाते हैं। और अधिक योग्यता आ जाने पर तो लोग सोतों और तालाबों में जमी हुई बर्फ़ पर ही बैठना ठीक समझते हैं। अभ्यास आरम्भ करने के पहले कोई वस्तु खानी पीनी नहीं चाहिए, विशेष कर किसी गरम तरल पदार्थ का पेट में जाना तो एकदम मना है।

बैठने के दो तरीक़े हैं। पाल्थी मारकर (पद्मासन) या पाश्चात्य ढङ्ग के अनुसार दो जानू होकर जिसमें दोनों हाथ सामने के दोनों घुटनों पर रक्खे होते हैं और अँगूठा, तर्जनी और कनिष्ठिका (सबसे छोटी उँगली) आगे को निकली रहती हैं और शेष

दोनों उँगलियाँ—बीचवाली और चौथी—अन्दर को हथेली के नीचे मुड़ी रहती हैं।

पहले प्राणायाम के द्वारा नासिका-मार्ग को शुद्ध-वायु से स्वच्छ कर लेते हैं फिर क्रम से अहङ्कार, क्रोध, घृणा, लोभ, ईर्ष्या और मोह को 'रेचक' के साथ मस्तिष्क से बाहर निकाल देते हैं। फिर एक 'पूरक' होता है, जिसमें सभी ऋषि-मुनियों का आशीर्वाद, भगवान् बुद्ध की आत्मा, पाँचों बुद्धियाँ और इस लोक में जो कुछ शिवम् और सुन्दरम् है उसका अपने में 'आविर्भाव' किया जाता है।

इसके अनन्तर कुछ देर तक मस्तिष्क को पूर्णत: एकाग्र करके अन्य सब भावों और मनोविकारों को एकदम दूर कर दिया जाता है। तब इसी शान्ति-पूर्ण स्थिति में अपनी नाभि में एक कमल की कल्पना करनी होती है। इस कमल पर सूर्य्य के समान प्रभा-पूर्ण शब्द 'राम' दिखलाई पड़ता है। 'राम' के ऊपर 'मा' होता है और 'मा' में से दोर्जी नालजोर्मा (एक देवी) निकलती है।

जैसे ही देवी नालजोर्मा दिखलाई दे, उसी क्षण तत्काल अपने को उसमें मिला देना चाहिए। देवी के प्रकट होते ही नाभि में 'आ' अक्षर स्पष्ट रूप से दिखलाई देता है। इस 'आ' के समीप ही एक छोटा सा अग्निकुण्ड होता है। 'पूरक' की सहायता से और मनोयोग के द्वारा इस अग्निकुण्ड को प्रज्वलित करना होता है जिसकी भयानक लपटों में नालजोर्पा अपने आपको घिरा हुआ देखता है। शुरू से आख़ीर तक बराबर इस अग्नि को प्रज्वलित रखने के लिए मन की एकाग्रता, प्राणायाम की तीनों क्रियाएँ (पूरक, कुम्भक और रेचक) और मन्त्र का क्रमबद्ध जाप नितान्त आवश्यक होता है। समस्त मानसिक शक्तियाँ केन्द्रीभूत

होकर केवल इसी अग्नि और उसकी लपटों को प्रज्वलित रखने में प्रवृत्तिशील रहती हैं।

मालूम होता है, तिब्बती लोगों ने भारतवासियों की इड़ा, पिङ्गला, सुषुम्ना का भाव अपनाया है। तिब्बती भाषा में नाड़ी के अर्थ में 'त्सा' शब्द प्रयुक्त होता है। इन्हें क्रम से 'रोमा', 'क्याङ्मा' और 'उमा' की संज्ञा दी गई है।

वास्तव में ये 'त्सा' साधारण रक्त की नाड़ियाँ नहीं है। ये सूक्ष्म आकार की, सारे शरीर में चेतना को पहुँचाने की नाड़ियाँ मानी गई हैं। 'त्सा' संख्या में असंख्य हैं। इनमें से तीन जो सबसे मुख्य हैं उन्हें ऊपर बता दिया गया है।

तत्त्वविद् दार्शनिकों के मतानुसार इस प्रकार की किन्हीं नाड़ियों की शरीर के भीतर कोई वास्तविक स्थिति नहीं है। वे बस अध्यात्मवाद के सिलसिले में केवल मान भर ली गई हैं।

मुख्य क्रिया के दस विविध अङ्ग हैं, किन्तु यह बात भली भाँति जान लेनी चाहिए कि इन दसों अङ्गों के बीच में कहीं कोई विराम नहीं है। एक के बाद दूसरा और दूसरे के बाद तीसरा, इस प्रकार क्रमशः बराबर विविध अङ्गों में भिन्न-भिन्न कल्पनाएँ और विभिन्न अनुभव होते चले जाते हैं। पूरक, कुम्भक और रेचक के साथ-साथ नियमित रूप से मन्त्र-विशेष का जाप होता रहता है। आरम्भ से लेकर अन्त तक मस्तिष्क सर्वथा एकाग्र रहता है। साधक देखता है केवल एक वस्तु त्यूमो की अग्नि और अनुभव करता है केवल एक वस्तु—उस प्रज्वलित अग्नि का प्रचण्ड ताप।

दस विविध अङ्गों का परिचय संक्षेप में इस प्रकार कराया जा सकता है—

१—मुख्य नाड़ी 'उमा' कल्पना में देखी जाती है। यह इतनी पतली होती है जितना कि पतले से पतला सूत या बाल।

फिर भी इसमें आग की लपटें ऊपर को ओर उठती रहती हैं और प्राणायाम की वायु उन्हें प्रज्वलित करती रहती है।

२—'उमा' और बड़ी दिखाई पड़ती है। बढ़ते-बढ़ते यह कनिष्ठिका उँगली के आकार की हो जाती है।

३—बढ़ते-बढ़ते वह भुजा के आकार की हो जाती है।

४—इस नाड़ी का प्रसार समस्त शरीर में हो जाता है। या दूसरे शब्दों में शरीर ही 'त्सा' हो गया है—एक शीशे की नली के समान जिसमें प्रज्वलित अग्नि और वायु भरी है।

५—स्थूल आकार अब नहीं दिखलाई पड़ता। अपरिमित रूप से आकार में बढ़कर 'उमा' समस्त संसार में व्याप्त हो जाती है। चारों ओर अग्नि ही अग्नि दृष्टिगोचर होती है, जिसकी भयङ्कर लपटों के बीच नालजोर्पा अपने को घिरा हुआ देखता है।

आरम्भ में साधक पाँचवें अङ्ग पर जल्दी ही से पहुँच जाता है। योग्य, त्यूमो के रहस्य से भली भाँति परिचित साधक धीरे-धीरे इतमीनान से अपनी क्रिया को पूरी करते हैं। फिर भी पाँचवें अङ्ग तक पहुँचते-पहुँचते कम से कम लगभग एक घण्टे के बराबर समय लग ही जाता है।

इसके पश्चात् फिर वही ऊपरवाली क्रिया, विपरीत क्रम से, करते हैं अर्थात् पाँचवें अङ्ग से प्रारम्भ करके पहले तक पहुँचा देते हैं।

इस क्रिया को कुछ लोग केवल पहले पाँच अङ्गों तक पहुँचाकर समाप्त कर देते हैं और कुछ लोग पीछे के पाँच अङ्ग भी करते हैं। साधक इसे दिन में, या जब कभी उसे सर्दी लग रही हो, कर सकता है; किन्तु सीखने के लिए प्रातःकाल ब्राह्म मुहूर्त्त का समय सबसे अधिक उपयुक्त माना गया है।

कभी-कभी अन्त में एक प्रकार की परीक्षा भी ली जाती है। और इस परीक्षा के साथ-साथ त्यूमो के इन विद्यार्थियों का शिक्षा-काल समाप्त होता है।

जाड़ों में किसी रात को, जब कि कड़ाके की सर्दी पड़ती होती है, सर्द हवा सन्-सन् करती हुई बहती और आकाश में चाँदनी छिटकी होती है, इन विद्यार्थियों को एक झरने या झील के पास ले जाया जाता है। अगर सभी सोते जम गये होते हैं तो बर्फ़ खोदकर एक छेद कर लिया जाता है। चेले नंगे-बदन पालथी मारकर ज़मीन पर बैठ जाते हैं और उसी बर्फ़ के पानी में चादरें भिगो भिगोकर उनके शरीर पर रक्खी जाती हैं। इस प्रकार सबेरे तक ये चादरें भीगती और सूखती रहती हैं। अन्त में जिसकी सुखाई हुई चादरों की गिन्ती सबसे अधिक होती है, वही बाज़ी मार ले जाता है।

कभी-कभी ये लोग जमी हुई बर्फ़ पर स्वयं बैठ जाते हैं और कुछ देर बाद नीचे की जितनी बर्फ़ पिघली रहती है या आस-पास जितनी दूरी तक बर्फ़ पर कोई असर पड़ा रहता है उससे बैठनेवाले की त्यूमो की शक्ति का अन्दाज़ा आसानी से लग जाता है।

बेतार की तार-बर्क़ी

मानसिक संक्रमण (दूर से एक दूसरे के विचारों को प्रभावित करना) रहस्यपूर्ण तिब्बत देश के अज्ञात ज्ञान-भाण्डार का एक मुख्य अंग है और 'बर्फ़ के इस भूखण्ड' में उसका वही स्थान है जो कि पश्चिम में बेतार के तार का है। पर जब कि बेतार के तार की आवश्यक मशीनें सभी पाश्चात्य देशों के निवासियों को आसानी से मिल सकती हैं, यहाँ तिब्बत में ईथर (हवा) के ज़रिये

ख़बर भेजने की और बारीक युक्तियाँ केवल इस देश के इने-गिने गुनी लामाओं तक ही परिमित हैं।

टेलीपेथी (मानसिक वार्त्तालाप) पश्चिम के लोगों के लिए कोई नई वस्तु नहीं है। वैज्ञानिकों ने स्वीकार किया है कि मनुष्य के शरीर में एक ऐसी शक्ति है जो हमें एक दूसरे के मानसिक विचारों का पता देने में आश्चर्यजनक क्षमता का परिचय देती है। लेकिन यह शक्ति कब और किस प्रकार काम में लाई जानी चाहिए, इस बात का अभी उन्हें कुछ पता नहीं है। उनके बड़े-बड़े वैज्ञानिक यंत्रों ने इस विषय में उनकी कुछ मदद नहीं की है और अभी तक टेलीपेथी प्रकृति के अभेद्य पर्दे के पीछे छुपा हुआ मनुष्य-जाति के लिए एक रहस्य-पूर्ण कौतूहल ही रहा है। किन्तु तिब्बत देश में यह बात नहीं है। वहाँ के सभ्य-समाज के सभी लोग इस सम्बन्ध में एकमत हैं कि टेलीपेथी भी विज्ञान का एक अङ्ग है जो किसी भी दूसरी विद्या की ही भाँति सीखी जाकर व्यवहार में लाई जा सकती है।

मानसिक संक्रमण के लिए सबसे अधिक ज़रूरी बातें हैं—मन की एकाग्रता और अन्य सब प्रकार के विचारों को मस्तिष्क से दूर करके समस्त चेतना-शक्ति को केवल एक ओर लगा देना।

इसके बाद भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में हमारे जो भिन्न-भिन्न मानसिक विकार होते हैं, उनका सतर्क विश्लेषण और आकस्मिक हर्ष, शोक, भय या एकाएक किसी की याद आ जाना—इस प्रकार की जो अनुभूति है उसका हमारी इन्द्रियों की चेष्टाओं पर क्या प्रभाव पड़ा करता है इसका भली भाँति ज्ञान करना आवश्यक होता है।

कुछ समय तक शिष्य अकेले अपने आप अभ्यास करता है। इसके बाद वह एक अँधेरे बन्द कमरे में अपने गुरु लामा के साथ

बैठता है। दोनों ध्यानस्थ हो जाते हैं और दोनों की विचार-धारा एक निर्धारित दिशा में बहती है। नियत समय के बाद शिष्य गुरु से ध्यान के समय की अपनी विविध मानसिक अवस्थाओं को बतलाता है। उसके अपने विचार जहाँ तक गुरु के विचारों से मिलते-जुलते हैं और जहाँ उनमें परस्पर अन्तर होता है—उन सब पर वह ध्यान देता है।

अब यथाशक्ति मन को अपने अधीन करके शिष्य सब प्रकार के विचारों से मस्तिष्क को ख़ाली कर देता है। तब उसके चित्त में अपने आप जो-जो भाव अकस्मात् उठते हैं और जिनका उसके वर्तमान कारबार या अनुभूति से कुछ भी सरोकार नहीं रहता है, उन पर वह ग़ौर करता है। उसके मस्तिष्क-पटल पर जो-जो चेतना-सम्बन्धी चित्र स्पष्ट प्रकट होते हैं उन्हें वह देखता जाता है। और फिर अन्त में ध्यान के बाद वह इन भावों और चित्रों को गुरु से बतलाता है जो इस बात की जाँच करता है कि कहाँ तक ये उसके संकेतित पदार्थों से मिलते-जुलते हैं।

फिर इसके बाद शिक्षक शिष्य को बैठे-बैठे मानसिक आदेश भेजता है, जिनके अनुसार शिष्य कार्य करता है। अगर इसमें सफलता प्राप्त हो गई तो और आदेश दिये जाते हैं। साथ ही साथ दोनों अपने बीच के फ़ासले को भी बढ़ाते जाते हैं।

शिष्य लोग कभी-कभी अपने आप अपनी जाँच करने के लिए एक दूसरे के पास मानसिक आदेश उस समय भेजते हैं, जब कि उसे पानेवाला किसी दूसरे काम में व्यस्त होता है। इस ख़बर के लेने की ओर उसका थोड़ा भी ध्यान नहीं होता। जिन लोगों से कभी कोई जान-पहचान नहीं होती और जो लोग टेलीपेथी किस चिड़िया का नाम है, यह भी नहीं जानते, उनके भी

मानसिक विचारों को प्रभावित करने की चेष्टा की जाती है। कुछ लोग तो जानवरों तक के ऊपर प्रयोग करते हैं।

यहाँ पर एक बात बतला देनी ज़रूरी है और वह यह है कि इस प्रकार के मेस्मेरिज़्म के विधान, जैसे अचानक छत से पत्र का नीचे गिर पड़ना या तकिये के नीचे लिफ़ाफ़े का मिल जाना तिब्बती लामाओं को बिल्कुल अज्ञात हैं। इस प्रकार की घटनाओं से सम्बन्ध रखनेवाले सवाल पूछे जाने पर वे इसे मज़ाक़ समझकर हँस पड़ते हैं। उन्हें किसी प्रकार विश्वास ही नहीं होता कि सवाल करनेवाला सचमुच हँसी नहीं कर रहा है। मुझे याद है कि मेरे मुँह से यह सुनकर कुछ फिलिङ्ग* लोग इस प्रकार के साधनों से मृत-आत्माओं से बातें करने में विश्वास करते हैं—ताशिल्हुन्पो के एक लामा ने बड़ी मज़ेदार बात कही थी—"और क्या, यही वे लोग हैं जिनके बारे में मशहूर है कि उन्होंने हिन्दुस्तान फ़तह किया है।" उसने फिलिङ्ग लोगों के बोदेपन पर विस्मय प्रकट करते हुए कहा था।

तिब्बतवासी इन अभ्यासों में साल के साल लगा देते हैं। इनमें से कितनों को सफलता प्राप्त होती है और कितने बेचारों को असफलता, यह तो परमात्मा ही जानता है। और चाहे जो हो, लेकिन इस प्रकार की घटनाओं को काफ़ी ऊँचे पहुँचे हुए आध्यात्मिक गुरु लामा बिल्कुल बेकार की बातें समझते हैं। उनका कहना है कि इस तरह की कौतूहल-पूर्ण शक्तियों के लिए उद्योग करना बच्चों का खिलवाड़ मात्र है।

कई वर्ष तक के अनुभवों के आधार पर मैं यह कह सकती हूँ कि तिब्बत देश में प्रकृति देवी ने कुछ ऐसा सामान ही जुटा दिया है और यहाँ की भूमि में कुछ ख़ास-ख़ास बातें ऐसी हैं

---

* विदेशी लोग।

जिनसे टेलीपेथी और अन्य विस्मय-पूर्ण मानसिक व्यापारों के लिए अधिक सुभीता सा है। ये ख़ास-ख़ास बातें क्या हैं?

इन्हें पृथक्-पृथक् भागों में बाँटना और उनके बारे में कोई निर्धारित नियम बता देना तो असम्भव सी बात है। जब कि इस अध्याय में वर्णित मनोयोग से सम्बन्ध रखनेवाली चामत्कारिक घटनाएँ ही हमारे लिए केवल विस्मय-जनक हैं तो हम उनके कारणों का ठीक-ठीक पता लगाने में भला कब समर्थ हो सकते हैं?

हो सकता है कि इसका सम्बन्ध इस देश की उँचाई से हो। सम्भव है यहाँ का अगाध शान्ति-सागर, जिसमें कि सारा का सारा तिब्बत डूबा हुआ है—वह असाधारण निःशब्द शान्ति जिसका शब्द—मैं कह सकती हूँ कि—बड़े से बड़े कोलाहल-पूर्ण पहाड़ी झरनों की ऊँची से ऊँची आवाज़ के ऊपर भी आसानी से सुनाई पड़ता रहता है, कोई ख़ास सुविधा पैदा कर देती हो।

इसके लिए हमें यहाँ की निःस्तब्धता पर भी ध्यान देना होगा। यहाँ की सड़कों पर और देशों की भाँति बड़ी-बड़ी भीड़ें जमा नहीं रहती हैं जिनके मानसिक विचार किसी न किसी रूप में ईथर (वायु) की शान्ति को भङ्ग करते रहते हों। इसके अतिरिक्त तिब्बतियों का सीधा-सादा मस्तिष्क भी, जो हमारे मस्तिष्क की भाँति तरह-तरह की चिन्ताओं और विचारों से भरा हुआ नहीं रहता, ज़रूर कुछ न कुछ अपना प्रभाव डालता ही होगा।

जो कुछ भी हो, इसमें कोई सन्देह नहीं कि यहाँ के आदमियों की जानकारी में या अनजाने में ही इच्छाशक्ति और मनोयोग से सम्बन्ध रखनेवाली घटनाएँ प्रायः घटती रहती हैं।

जब मैं ल्हासा की यात्रा कर रही थी तो डेनशिन नदी की घाटी में मुझे टेलीपेथी की शक्तियों का प्रत्यक्ष प्रमाण भी देखने को मिला था। चोसूद-जौंग की गुम्बा के एक लामा ने जिस ढङ्ग से

अपने एक शिष्य को मानसिक आदेश दिया था, उसका जैसे का तैसा वर्णन यहाँ मैं पाठकों के कौतूहल के लिये देती हूँ।

यौङ्ग्देन और मैं रात भर एक ठण्ढे मैदान में सोये थे। हमें रात को सर्दी ख़ूब लगी थी और सुबह भी ईंधन की कमी के कारण बिना चाय पिये ही हमें फिर चल देना पड़ा था। भूखे, प्यासे हम दोपहर तक चलते रहे। सड़क के किनारे हमें एक लामा अपनी दरी पर बैठा दिखाई पड़ा जो अभी-अभी अपना दोपहर का खाना समाप्त कर रहा था। लामा को देखते ही मन में कुछ श्रद्धा सी उत्पन्न हो जाती थी। उसके साथ तीन त्रापा और भी थे जो शायद उसके चेले ही थे; क्योंकि उनकी पोशाक नौकरों की सी नहीं थी। चार फन्दे-पड़े घोड़े भी आस-पास घास चर रहे थे।

इन लोगों के साथ बहुत सी लकड़ी थी और चाय की केटली अब भी आग पर गरम हो रही थी।

हम लोग भेस बदलकर यात्रा कर रहे थे। हमारा लिबास निर्धन यात्रियों का सा था। अस्तु, हमने लामा को सादर प्रणाम किया। हो सकता है, चाय की केटली को देखकर हमारे मन में जो भाव हो आये थे उन्हें उसने हमारे चेहरों पर ज्यों का त्यों पढ़ लिया हो। उसने धीरे से कहा—"निन्जे* !" और तब हमें पास ही बैठ जाने का इशारा कर दिया। बैठते ही उसने हमसे अपना प्याला † निकालने को कहा।

एक त्रापा ने हमारे प्यालों में चाय उँडेली और सामने त्साम्पा लाकर रख दिया। इसके बाद वह अपने साथियों को

---

* तिब्बती लामा अक्सर इस शब्द का प्रयोग करते हैं। इसका अर्थ है "आह बेचारे बदनसीब !" "ओह ! अफ़सोस।"

† हर एक तिब्बती अपना प्याला अपने साथ रखता है; क्योंकि दूसरे किसी का पात्र वह व्यवहार में नहीं ला सकता।

यात्रा के लिए घोड़ों को तैयार करने में मदद देने लगा। एकाएक उन घोड़ों में से एक रस्सी तुड़ाकर भाग खड़ा हुआ और वह रस्सी लेकर उसके पीछे दौड़ा।

लामा शायद अधिक बातचीत करना पसन्द नहीं करता था। वह चुपचाप उसी भागे हुए घोड़े की ओर देखता रहा। अब मेरी निगाह लकड़ी के एक बर्तन पर पड़ी जिसके पेंदे में दही का बचा हुआ कुछ भाग सूख रहा था। दूर पर एक देहात दिखलाई दिया। मैंने अनुमान किया कि वहीं से लामा ने यह दही मँगाया होगा। बग़ैर तरकारी के सूखे त्साम्पा को गले से नीचे उतारने में हमें कठिनाई हो रही थी और मैंने योंगदेन के कान में चुपके से कहा—"लामा के चले जाने पर तुम उस देहात में जाना। वहाँ दही ज़रूर मिल जायगा"।

यद्यपि मैं बिल्कुल धीरे बोली थी और हम लोग लामा के बहुत पास भी नहीं बैठे थे, फिर भी शायद लामा ने मेरी बात सुन ली। उसने मेरी ओर अपना मुँह किया और एक बार धीरे से उसके मुँह से निकला—"निंजे !"

इसके बाद उसने उस तरफ़ अपना मुँह फेर लिया जिधर वह घोड़ा भाग गया था। वह ग़ौर से उधर ही देखता रहा। त्रापा ने घोड़े को पकड़ लिया था और अब वह उसके गले में रस्सी डालकर वापस ले आ रहा था। अकस्मात् वह त्रापा ठिठक गया, जैसे उसे कोई बात याद हो आई हो। वह वहीं घोड़े को एक पत्थर से बाँधकर सीधा पीछे वापस लौटा। कुछ दूरी पर जाकर उसने सड़क छोड़ दी और उसी देहात की ओर चला गया जिसे मैंने योंगदेन को दिखाया था। थोड़ी देर बाद हमने उसे घोड़े के पास 'कोई चीज़' लेकर लौटते देखा।

जब वह घोड़ा लेकर हमारे पास तक आ गया तो मुझे पता चला कि वह 'कोई चीज़' और कुछ नहीं, दही से भरा हुआ एक काठ का बर्तन है। उसने उसे लामा को नहीं दिया, बल्कि उसे हाथ में लिये हुए उसकी ओर खड़ा देखता रहा जैसे पूछ रहा हो— "क्या आपने यही चीज़ मँगाई थी? अब मैं इस दही का क्या करूँ?"

उसके इस मूक प्रश्न के उत्तर में लामा ने सर हिलाकर "हाँ" कर दिया और त्रापा को बतलाकर कहा कि दही मेरे लिए है।

दूसरी जिस घटना का उल्लेख मैं कर रही हूँ वह तिब्बत के भीतर नहीं बल्कि उस सरहदी हिस्से में घटी जो अब चीन के ज़ेचुआन और काँसू के प्रान्तों में मिला लिया गया है।

तागन और कुन्का दर्रे के बीच में जो जङ्गल पड़ता है उसके पास से होकर हम लोग यात्रा कर रहे थे। इन हिस्सों में डाकू बहुतायत से देखे जाते हैं। इधर से जानेवालों का जितनी ही बड़ी संख्या में सफ़र करना हो सके उतना ही अच्छा होता है। हमारे साथ छः यात्री और आ मिले थे। इनमें से पाँच चीनी व्यापारी थे और एक कोई लम्बे क़द का बोन्पो ङाग्स्पा था जिसके बड़े-बड़े बाल किसी लाल चीज़ में लपेटे हुए थे और सर पर बहुत बड़े साफ़े का काम दे रहे थे।

मैंने देखा, मौक़ा अच्छा है। इससे कोई न कोई नई बात अवश्य मालूम होगी। मैंने उसे अपने साथ भोजन करने की दावत दी। बात-बात में पता चला कि वह अपने गुरु का साथ देने जा रहा था। उसका गुरु एक भारी बोन्पो जादूगर था जो पास की किसी पहाड़ी पर एक बड़ा डबथब (अनुष्ठान) कर रहा था। इस डबथब से वह एक बड़े शक्तिशाली दैत्य को अपने वश में करना चाहता था। मैंने अपने मेहमान के गुरु से मिलने की

उत्कट अभिलाषा प्रकट की। ङाग्स्पा ने सर हिलाया और कहा कि ऐसा होना नितान्त असम्भव है। जब तक अनुष्ठान समाप्त न हो जाय, कोई उसके गुरु के पास तक नहीं जा सकता।

मैं समझ गई कि इसके साथ तर्क करना व्यर्थ है। चुप रही और सोचा कि जब यह ङाग्स्पा हमारा साथ छोड़कर अलग हो जायगा तब हम लोग भी चुपके-चुपके इसका पीछा करेंगे। सम्भव है, इस प्रकार अकस्मात् पहुँचकर अनुष्ठान करते हुए बोन्पो जादूगर की एक झलक देखने को मिल जाय। मैंने अपने नौकरों को उस ङाग्स्पा पर ध्यान रखने की चेतावनी कर दी।

मालूम होता है, ङाग्स्पा मेरा आशय ताड़ गया। उसने यह भी अनुभव किया होगा कि हम लोगों के बीच में उसकी हालत कुछ-कुछ नज़रबन्द क़ैदियों की सी थी। लेकिन ङाग्स्पा ने किसी बात का बुरा न माना। उसने हँसते-हँसते मुझसे कहा भी—"यह न समझिएगा कि मैं भाग जाऊँगा। अगर आपको मंशा हो तो आप मुझे रस्सियों से जकड़ दीजिए। मुझे आपसे पहले वहाँ पहुँचने की आवश्यकता ही नहीं है। मेरा गुरु पहले से ही सब जान गया है। 'ङग्इस लङ् गी तेङ् ला तेन ताङ् त्सार' मैंने मानसिक संक्रमण से सूचना भेज दी है।"

मैंने उसकी बात पर कुछ ध्यान न दिया। मैं जानती थी कि ये लोग बड़ी-बड़ी डींगें मारने में पक्के उस्ताद होते हैं। अक्सर झूठ-मूठ अद्भुत-अद्भुत शक्तियों को उपयोग में लाने का दम भरते हैं।

किन्तु इस बार मेरी धारणा ग़लत साबित हुई।

हम लोग दर्रे को पार करके बाहर निकले। हमारे सामने अब खुला मैदान था। डाकुओं का भय न रहा और चीनी व्यापारी हमसे विदा लेकर अलग हो गये। मेरी इच्छा अब भी अपने साथी ङाग्स्पा का पीछा करने की थी कि एकाएक छः

घुड़सवार बड़ी तेज़ी से सरपट आते दिखाई दिये। पास आने पर वे अपने-अपने घोड़ों पर से उतर पड़े। उन्होंने 'खा-ताग्स' (अभिवादन) किया और उपहार में मक्खन दिया। यह सब शिष्टाचार हो चुकने पर उनमें से एक वय में बड़े भले आदमी ने मुझसे संकेत से यह प्रार्थना की कि मैं अपना इरादा बदल दूँ और बोन्पो तान्त्रिक के डबूथब में कोई बाधा न दूँ। उन्होंने बतलाया कि ख़ास-ख़ास शिष्यों के सिवा और किसी को वहाँ जाने की अनुमति नहीं है, जहाँ जादू का क्यिलक-होर बनाकर बोन्पा अपना अनुष्ठान पूरा कर रहे हैं।

मैंने अपना विचार बदल दिया। सचमुच, मालूम होता है, ड्राग्स्पा ने शायद अपने गुरु को मेरे बारे में ख़बर भेज दी थी।

ज्ञात होता है, दृष्टि-सम्बन्धी मानसिक संक्रमण (टेलीपेथी) से भी तिब्बतवासी अपरिचित नहीं हैं। क़िस्से-कहानियों की बात जाने दीजिए, तिब्बत में आज भी कुछ ऐसे लोग मौजूद हैं जिनका दावा है कि उन्होंने स्वयं ऐसे काल्पनिक छायाचित्र देखे हैं जो उन तक किसी न किसी टेलीपेथिक ढंग से पहुँचाये गये थे। ये चित्र उन सूरतों से बिल्कुल भिन्न होते हैं, जिन्हें हम अपने स्वप्नों में देखते हैं। कभी-कभी छाया-चित्र ध्यान की अवस्था में प्रकट होता है और कभी-कभी तब जब कि देखनेवाला किसी न किसी मामूली काम में लगा रहता है।

एक लामा त्सिपा* ने मुझसे बतलाया कि एक बार खाना खाते समय उसने एक ग्युद† लामा को देखा। यह उसका बड़ा मित्र था जिसे उसने बहुत समय से नहीं देखा था। ग्युद लामा

---

* ज्योतिषी।

† ग्यि-उद् कालेज का सहपाठी जहाँ बाक़ायदा तन्त्र-शास्त्र (जादूगरी) की शिक्षा दी जाती है।

अपने घर की चौखट पर खड़ा था और उसके बग़ल में एक अधेड़ उम्र का त्रापा, पीठ पर एक छोटी सी गठरी लिये हुए, खड़ा था जैसे वह अभी-अभी अपनी यात्रा के लिए रवाना होने को प्रस्तुत हो। त्रापा ने लामा के पैरों में सिर नवाया और आज्ञा माँगी। लामा ने उसे उठाकर मुसकराते हुए कुछ कहा और तब उत्तर की ओर हाथ से इशारा किया। त्रापा इसी दिशा में घूमा और उसने फिर तीन बार झुक-झुककर प्रणाम किया।

तब उसने अपने चोग़े को सँभाला और चल पड़ा। त्सिपा ने यह भी देखा कि चोग़ा एक किनारे पर बुरी तरह से फटा हुआ है। इसके बाद ही यह छाया-चित्र लुप्त हो गया।

कुछ सप्ताह के बाद यही यात्री ग्युद लामा के पास से सचमुच ही आया और त्सिपा लामा से गणित-ज्योतिष के कुछ अंगों की शिक्षा प्राप्त करने की इच्छा प्रकट की।

त्रापा ने बतलाया कि अपने पिछले गुरु से बिदा होते समय उसने जब उसे प्रणाम किया तो ग्युद लामा ने हँसते हुए जो बात कही थी वह यह थी—"तुम अब अपने नये गुरु के पास जा रहे हो। उसे भी इसी समय प्रणाम कर लेना तुम्हारा कर्त्तव्य है।" फिर उसने उत्तर की ओर हाथ उठाकर बताया था कि इसी दिशा में त्सिपा लामा का घर पड़ता है।

लामा को अपने नये शिष्य के लबादे में वह फटा हुआ हिस्सा भी दिखलाई पड़ा जिस पर उसकी निगाह पहले ही छाया-चित्र में पड़ चुकी थी।

अन्त में अपने कुछ निजी अनुभवों के बारे में मैं कह सकती हूँ कि मैंने स्वयं काफ़ी समय इस टेलीपेथिक विज्ञान को सीखने में नष्ट किया था और कई बार अपने गुरु लामाओं के मानसिक आदेश समझ सकने में सफल भी हुई थी।

सातवाँ अध्याय

अध्यात्म की शिक्षा

तिब्बत की धार्मिक जनता को हम दो भागों में बाँट सकते हैं। पहले हिस्से में वे लोग आते हैं जो परम्परा से चले आये हुए ढोंगों में पूरा अन्ध-विश्वास रखते हैं और दूसरे वे लोग हैं जो ऊपरी बनावटी बातों को बेकार समझते हैं और निर्धारित नियमों की अवहेलना करके अपने-अपने अलग तरीक़े पर मुक्ति-मार्ग की स्वतन्त्र खोज के पक्ष में हैं।

लेकिन इसके यह माने कदापि नहीं हैं कि दोनों दलों के लोगों में आपस में कोई वैर भाव रहता है। इनमें आपस में धार्मिक मतभेद चाहे जितना हो, पर और सभी बातों में इनका परस्पर का बर्ताव भाई-चारे का सा रहता है।

नियमित रूप से साधु-जीवन व्यतीत करनेवाले संन्यासी मानते हैं कि सदाचार और मठ की नियम-बद्धता से आम तौर पर बहुतों को लाभ पहुँचता है, किन्तु वास्तव में ये बातें एक ऊँचे लक्ष्य तक पहुँचाने के लिए सीढ़ियाँ भर हैं। दूसरे वर्ग के पक्षपाती स्वीकार करते हैं कि सदाचार की शिक्षाओं और नियमित जीवन का अपना अलग महत्त्व है और शुरू-शुरू में शिष्यों को इनकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए।

और फिर यह बात तो आम तौर पर सभी लोग मानते हैं कि दोनों में से पहला तरीक़ा अधिक सरल है। साधु-जीवन, सच्चरि-त्रता, जीवों पर दया, सांसारिक लिप्साओं का पूर्णतया तिरस्कार

और मानसिक शान्ति—इन सबसे मोह दूर होता है; और मोह का सर्वथा निवारण ही मुक्ति का एकमात्र उपाय है।

एक तीसरा तरीक़ा जिसे लोगों ने सीधा मार्ग* (या सीधा तरीक़ा) का नाम दिया है, बहुत ही आपत्ति-जनक समझा जाता है। जो लोग इसकी शिक्षा देते हैं, उनका कहना है कि इस मार्ग को पकड़ना वैसा ही है जैसे कि किसी पहाड़ी की ऊँची चोटी तक पहुँचने के लिए चक्कर मारती हुई ऊपर जानेवाली पहाड़ी पगडण्डी का सहारा न लेकर कोई एकदम सीधी चट्टानों को पार करता हुआ ऊपर तक पहुँचने का दुस्साहस करे। इस काम में तो बस जो सच्चे शूर और असाधारण साहसी होंगे वे ही सफलता पा सकेंगे। थोड़ी सी भी लापरवाही हो जाने से पतन अवश्यम्भावी रहता है; चतुर से चतुर आदमी सैकड़ों गज़ नीचे गिरकर अपनी हड्डी-पसली तोड़ लेगा।

इस पतन से तिब्बती धर्म्म-आचार्य्यों का तात्पर्य धार्मिक अधः-पतन से है जो कि मनुष्य को नीची से नीची दशा तक पहुँचा सकता है; आदमी मनुष्य से जानवर बन सकता है।

मैंने एक विद्वान लामा को यह कहते हुए सुना है कि सुगम मार्ग के कठोर सिद्धान्त बहुत कुछ उत्तरी और मध्य एशिया के एक बड़े प्राचीन मत से मिलते-जुलते हैं। लामा का पक्का विश्वास था कि ये सिद्धान्त बुद्धदेव की सबसे महत्त्वपूर्ण शिक्षाओं से हू-बहू मिलते-जुलते हैं जैसा कि भगवान् के उपदेशों से साफ़ पता चलता है। पर लामा ने यह भी बतलाया कि बुद्ध भगवान् जानते थे कि सुगम-मार्ग का उपाय बहुत थोड़ों के लिए हितकर होगा। साधारण तौर पर लोगों के लिए वही रास्ता ठीक होगा जो सीधा-सादा हो और जिसमें किसी आपत्ति की सम्भावना न हो। इसी लिए उन्होंने

* लाम चंग अर्थात् छोटा रास्ता।

साधारण श्रेणी के लोगों और औसत दर्जे की बुद्धि के भिक्षुओं के लिए एक सुभीतेवाले धर्म का प्रचार करना ठीक समझा।

इसी लामा को शाक्य-मुनि गौतम के ग्य-गर् (भारतवर्ष) में जन्म लेने पर भारी सन्देह था। उसका कहना था कि शायद शाक्य-मुनि के पूर्वज किसी एशियाई क़ौम के लोग थे। उसे इस बात का पूरा विश्वास था कि आगामी बुद्ध भगवान् मैत्रेय उत्तरी एशिया में ही फिर जन्म लेंगे।

कहाँ से उसने ये विचार इकट्ठे किये थे, इसका मुझे कुछ पता नहीं लग सका। एशियाई संन्यासियों के साथ वाद-विवाद की रत्ती भर भी गुञ्जाइश नहीं होती। आपके सौ सवालों का जवाब वे बस एक "मैंने ऐसा-ऐसा अपने ध्यान में देखा है" में दे देते हैं। और जहाँ उन्होंने एक बार ऐसा कह दिया, वहाँ फिर उनसे किसी बात का पता चलाने की आशा करना दुराशा मात्र है।

इसी तरह के विचारों में विश्वास करनेवाले नैपाल के कुछ नेवार भी मेरे देखने में आये। उनका कहना था कि गौतम बुद्ध उनके अपने देश में पैदा हुए थे और वे लोग और चीनी एक ही जाति के थे।

तिब्बती जादूगरों के पास रहकर शिक्षा ग्रहण करनेवाले विद्यार्थी दो भागों में बाँटे जा सकते हैं—

एक तो वे लोग हैं जो प्रकृति पर किसी प्रकार की विजय नहीं चाहते, बल्कि कुछ देवताओं का इष्ट प्राप्त करने में यत्नशील रहते हैं। या कुछ जिन्दों को अपने वश में करके उनसे तरह-तरह की ग़ुलामी लेने की कोशिश करते रहते हैं। इस तरह के जीवधारी सचमुच ही किसी लोक में वास करते हैं—इस बात में ये थोड़ा भी सन्देह नहीं रखते। वे यह भी मानते हैं कि उनकी अपनी

शक्ति इन जिन्दों की ताक़त से कहीं कम होती है और जो काम वे इन्हें अपना ग़ुलाम बनाकर करवा सकते हैं उसे अकेले बिना इनकी मदद के, लाख सर मारने पर भी, नहीं कर सकते।

दूसरी श्रेणी में केवल थोड़े से चतुर अनुभवी आते हैं। ये भी कभी-कभी उन्हीं तरीक़ों से काम लेते हैं जिनका उनसे कम होशियार पहली श्रेणी के जादूगर प्रयोग करते हैं। पर जिस उद्देश्य से ये ऐसा करते हैं वह बिल्कुल दूसरा ही होता है। पहली श्रेणी के जादूगरों की तरह ये बहुत सी प्राकृतिक कौतूहल-मयी घटनाओं को केवल 'करामात' ही नहीं समझते, प्रत्युत उनका विश्वास है कि इनकी वजह ख़ुद जादूगरों में उत्पन्न होनेवाली एक शक्तिविशेष है जो उसके वास्तु-शास्त्र के वास्तविक ज्ञान पर बहुत कुछ निर्भर रहती है। ये दूसरे प्रकार के जादूगर बहुधा पहुँचे हुए फ़क़ीरों की भाँति लोक-दृष्टि से छिपे ही रहते हैं। जहाँ तक हो सकता है वे अपने को अज्ञात-वास में ही रखना पसन्द करते हैं। उन्हें नाम की भूख नहीं होती और वे कभी-कभी ही अपनी शक्तियों का उपयोग करते हैं। हाँ, पहले प्रकार के जादूगर तरह तरह के विस्मयपूर्ण चमत्कार दिखाकर लोगों को आश्चर्य से भर देना ही एक बड़ा भारी काम समझते हैं। छोटे से छोटे भीख माँगते हुए मदारियों से लेकर बड़े से बड़े धनवान् गृहस्थों तक में इस प्रकार के बहुत से जादूगर, करामाती भविष्यवक्ता, मायावी ओझे ढूँढ़ने पर पाये जा सकते हैं।

ऊपर मैं बता चुकी हूँ कि अनेक उत्साही नवयुवक योग्य गुरु के पाने के लिए कैसे-कैसे साहसिक कार्य करते हैं। और इस उद्देश्य की सिद्धि के लिए बड़ी से बड़ी कठिनताओं का हँसते-हँसते सामना कर लेते हैं। सचमुच उपयुक्त गुरु बड़े भाग्य से ही मिलता है। इसके खोजने में काफ़ी सावधानी से काम लेना

पड़ता है और जिस दिन किसी को अपना गुरु मान लेते हैं उस दिन समझा जाता है कि आज जीवन की एक बड़ी महत्त्वपूर्ण घटना घटी। कहने की आवश्यकता नहीं है कि इस गुरु की योग्यता पर ही शिष्य का सारा भविष्य निर्भर रहता है।

आरम्भ में कुछ दिनों तक गुरु अपने नये चेले की योग्यता की जाँच करता है। इसके बाद दर्शन-शास्त्र के कुछ सिद्धान्तों से वह उसका परिचय कराता है। एकाध क्यिल्कहोर का खींचना बताकर उसे उनका मतलब भी समझा देता है।

इसके बाद जब उसे विश्वास हो जाता है कि शिष्य होनहार है तब वह उसे अध्यात्म-शास्त्र की विधिवत् प्रणाली से शिक्षा देना प्रारम्भ करता है।

अध्यात्मवाद की शिक्षा इन तीन प्रकारों में दी जाती है।

१. तावाँ—देखना, जाँच करना;

२. गोम्-पा—सोचना, ध्यान करना;

३. श्योद्-पा—अभ्यास करना, और अन्त में इसी के द्वारा उद्देश्य की सिद्धि।

एक दूसरी कम प्रचलित तालिका इन चार शब्दों में उसी बात को एक दूसरे ढङ्ग से कहती है।

१. { तोन :—अर्थ, कारण अर्थात् वस्तुओं की जाँच-पड़ताल—उनकी व्युत्पत्ति और उनके आरम्भ और अन्त का कारण।
लोब् :—विभिन्न सिद्धान्तों का दर्शन। }

२. गोम् :—जो कुछ सीखा-पढ़ा गया है या किसी और ढङ्ग से ज्ञात हुआ है—उसके बारे में सोचना।

विधिवत् ध्यान लगाने का अभ्यास।

३. तोग्स :—परम ज्ञान।

विद्याध्ययन करने के लिए शिष्यों को अपने आपको किसी निर्जन स्थान में बन्द कर लेना होता है। गुरु लामा अक्सर उसे 'त्साम' कोठरियों में बन्द होकर अभ्यास करने का आदेश देता है।

'त्साम्' शब्द का अर्थ होता है 'सीमा, किसी देश की सरहद'। धार्मिक शब्द-कोष में त्साम में रहने का तात्पर्य है एकान्तवास, एक हद के भीतर चले जाना और फिर उसके बाहर पैर नहीं रखना।

यह हद कई प्रकार की होती है। बहुत आगे बढ़े हुए आध्यात्मिक लामा अपने लिए किसी प्रकार की स्थूल सीमा की आवश्यकता नहीं समझते। ध्यानस्थ होने के पूर्व ही अपने आपको एक काल्पनिक हद के भीतर रखकर शेष वस्तु आकार रखनेवाले पदार्थों से वे अपने आपको अलग कर लेते हैं।

'त्साम' अनेक प्रकार के होते हैं। इनमें से कुछ कम कठिन होते हैं और कुछ थोड़े और कड़े। सहल तरीक़ों में से एक यह भी है कि कोई गृहस्थ अपने निजी कमरे में ही बन्द हो जाता है। वह या तो बाहर निकलता ही नहीं और अगर निकलता भी है तो इसके लिए वह कुछ समय नियत कर लेता है। उसका यह बाहर निकलना भी किसी धार्मिक उद्देश्य से ही होता है जैसे प्राचीन देवस्थानों की परिक्रमा करना या कुछ मूर्त्तियों के आगे दण्ड-प्रणाम करने आदि के लिए।

अपने नियम के अनुसार त्साम्सपा* लोकहित के लिए बाहर निकल सकता है या विपरीत दशा में उनकी आँख बचाकर रहता है। पहले क़ायदे के मुताबिक़ वह अपने घर के लोगों से, रिश्तेदारों और नौकरों से कभी-कभी बोल लेता है। जब तब दो-एक

---

* त्साम में रहनेवाला। याद रहे 'त्साम्सपा' और शब्द है और त्साम्पा और।

मिलने-जुलनेवाले भी उसके कमरे में आ-जा सकते हैं; लेकिन दूसरे ढङ्ग पर रहनेवाले त्साम्सपा केवल उन्हीं लोगों से बोलते हैं जो उनकी दैनिक आवश्यकताओं को जुटाने का काम करते हैं। किसी को उनके पास तक जाने की आज्ञा नहीं रहती। अगर काम बहुत ज़रूरी हुआ तो एकाध मिनट के लिए दोनों एक दूसरे से बातचीत कर सकते हैं, लेकिन ऐसे अवसरों पर उनके बीच में एक बड़ा सा पर्दा खड़ा कर दिया जाता है और वे एक-दूसरे को बग़ैर देखे बातें करके अलग हो जाते हैं।

प्रायः बहुत से तिब्बती विद्वान् इन उपायों को किसी धार्मिक उद्देश्य की सिद्धि के लिए नहीं, प्रत्युत यों ही विद्याभ्यास के लिए काम में लाते हैं। ये और कुछ नहीं, व्याकरण, दर्शन, ज्योतिष या वैद्यक का अध्ययन करते हैं और विघ्नों से दूर रहने के लिए इस प्रकार का निर्जन एकान्तवास उन्हें अपने काम के लिए बहुत ठीक समझ पड़ता है।

कुछ केवल एक नौकर के सामने हो सकते हैं और कुछ किसी के भी नहीं।

कुछ एकदम मौनव्रत धारण कर लेते हैं और आवश्यकता पड़ने पर लिखकर बातें कर सकते हैं।

कुछ अपनी खिड़कियों को इस प्रकार बन्द कर लेते हैं कि कोई भी प्राकृतिक दृश्य या आकाश के सिवा बाहर की कोई भी वस्तु उनके देखने में नहीं आ सकती।

बहुत से ऐसे भी होते हैं जो अपनी खिड़कियाँ एकदम बन्द कर लेते हैं या किसी बिना खिड़की की कोठरी में रहते हैं। वे आकाश को भी नहीं देख सकते। हाँ, बाहर से रोशनी भीतर आ सकने के लिए कोइ न कोई प्रबन्ध ज़रूर कर दिया जाता है।

उस हालत में जब कि त्साम्सपा किसी के सामने नहीं होता—भोजन करने के समय वह एक दूसरे कमरे में चला जाता है और तब नौकर खाना लाकर उसके कमरे में रख देता है। अगर त्साम्सपा के व्यवहार में एक ही कमरा हुआ तो नौकर चौखट के पास लाकर भोजन का थाल रख देता है और दरवाज़े पर खट् खट् का शब्द करता है। आसपास के लोग बग़ल के कमरों में चले जाते हैं और त्साम्सपा किवाड़ खोलकर थाली अन्दर कर लेता है। कोई भी ज़रूरी चीज़ उसे इसी तरीके पर मिल सकती है और इसी ढङ्ग से वह चीज़ों को लौटा भी देता है। दरवाज़े का कुण्डा खटखटाने से या एक घण्टी बजाने से लोग उसी तरह अपने-अपने कमरों में चले जाते हैं। और दो-एक मिनट के लिए त्साम्सपा फिर अपने त्साम के भीतर घुस जाता है।

इस तरह के त्साम में रहनेवालों में से कुछ तो अपनी आवश्यकताओं को काग़ज़ पर लिखकर बता देते हैं; लेकिन कुछ इस सुभीते से भी फ़ायदा नहीं उठाते। मानी हुई बात है कि उन्हें अपनी आवश्यकताओं को एकदम ही कम कर देना पड़ता है। यहाँ तक कि अगर उन्हें खाना पहुँचानेवाला भी अपना काम किसी दिन भूल जाय तो वे मौनव्रत और उपवास दोनों पुण्य-कर्मों का फल एक साथ ही उपार्जन कर लेते हैं।

आम तौर पर इस तरह का अपने घर ही में 'सीमा के भीतर रहना' बहुत कम दिनों तक रहता है। अधिक से अधिक एक साल तक इसकी अवधि होती है। प्रायः तीन माह, एक माह, एक सप्ताह या कभी-कभी कुछ दिनों में ही गृहस्थ त्साम्सपा अपने एकान्तवास को तोड़ देते हैं।

स्पष्ट है कि अधिक समय का और कड़ा एकान्तवास अपने घर की साधारण कोठरियों में होना असंभव है। वहाँ चाहे

कितनी भी सावधानी से काम लिया जाय, लोगों के इधर-उधर आते-जाते रहने से और घर के सांसारिक वातावरण से इतने अधिक सन्निकट होने के कारण त्साम्सपा के कार्य्य में थोड़ा-बहुत विघ्न पड़ ही जाता है।

कुछ लामा तो विहारों की शान्ति और नीरव वातावरण को भी काफ़ी नहीं समझते। बहुत सी गुम्बाओं की ओर से ऐसे एकान्तवासप्रेमियों की सुविधा के लिए अलग से कुछ दूर पहाड़ी पर छोटे-छोटे घर बने होते हैं। इन घरों को 'त्साम्सखाङ्' कहते हैं। कभी-कभी तो ये एकान्तगृह विहारों से इतनी दूरी पर बनाये जाते हैं कि उनके बीच में कुछ दिनों के मार्ग का अन्तर रहता है।

प्रायः सभी त्साम्सखाङ् दो भागों में बँटे होते हैं। एक कमरा एकान्तवासी के उठने-बैठने और सोने के काम में आता है और दूसरा भोजनालय का काम देता है। इसी में उसका नौकर भी रहता है।

जब त्साम्सपा किसी आदमी के सामने नहीं होता तो उसका नौकर उससे अलग कुछ दूर की एक झोंपड़ी में रहता है। त्साम्सपा के कमरे में एक जँगला खोल दिया जाता है और इसी रास्ते से वह अपना भोजन पाता है। पूरा भोजन तो दिन भर में सिर्फ़ एक बार पहुँचाने का नियम है पर मक्खन पड़ी हुई चाय कई बार लाई जा सकती है। अगर लामा 'लाल टोपी' वाले किसी सम्प्रदाय का अनुयायी हुआ तो चाय की जगह पर वह जौ की मदिरा का प्रयोग करता है। तिब्बतियों में प्रायः एक जौ का थैला अपने साथ रखने का चलन होता है। इस थैले में से वह, जब उसकी इच्छा होती है, दो-एक मुट्ठी भर निकालकर चाय या जौ की मदिरा के साथ फाँक जाता है।

हैं और अपने आसपास के स्थान का थोड़ा बहुत अन्दाज़ा कर सकने में समर्थ होती हैं।

जो लोग इन तहखानों में कई साल बिता चुके हैं, उनका कहना है कि ये कोठरियाँ अद्भुत दिव्य-प्रकाश से आलोकित रहती हैं। कभी तो इनमें रोशनी भर जाती है, कभी कमरे की प्रत्येक वस्तु प्रकाश से चमकने लगती है और कभी खिले हुए फूल, आकर्षक प्राकृतिक दृश्य और जब-तब सुन्दर दिव्यांगनाएँ इन्हीं कमरों में उनके सामने आ-आकर प्रकट होती हैं।

दिलबहलाव के लिए इन चीज़ों के सिवा और बहुत से प्रलोभन इन तहखानों में त्साम्सपा का स्वागत करते हैं। धार्मिक आचार्यों के मतानुसार ये कम साहसी, अल्प बुद्धिवाले शिष्यों को भुलावे में फाँसने के लिए होते हैं।

त्साम्सपा जब इन अँधेरी कोठरियों में कई साल बिता चुकता है और उसके एकान्तवास की अवधि समाप्त होती रहती है तो थोड़ा-थोड़ा करके वह अपने नेत्रों को फिर प्रकाश से अभ्यस्त करना आरम्भ करता है। इसके लिए उसकी कोठरी की एक दीवाल में ऊपर एक बहुत छोटा सा छेद कर दिया जाता है। रोज़ इसे थोड़ा-थोड़ा करके बड़ा करते जाते हैं। शुरू-शुरू में यह आल्पीन के ऊपरी सिरे के बराबर होता है और धीरे-धीरे बड़ा होता-होता यह खिड़की के आकार का हो जाता है। यह काम या तो त्साम्सपा ख़ुद करता है या उसके मित्रों में से कोई अथवा उसका गुरु। जितनी लम्बी एकान्तवास की अवधि होती है, उतना ही अधिक समय इस छेद को बड़ा करने में लग जाता है।

जो लोग अपनी ज़िन्दगी में पहली बार इन कोठरियों में बन्द होते हैं वे एकान्तवास की अवधि में समय-समय पर अपने गुरु से मन्त्र भी लेते रहते हैं। यह गुरु उनसे बाहर से ही

उसी खिड़की के रास्ते से बातचीत करता है, जिससे होकर उसका भोजन अन्दर आता है। गुरु लामा अपने हाथ से इस कोठरी का ताला बन्द करता है और इस मौक़े पर तथा बाद में जब वह उसे अपने हाथ से खोलकर शिष्य को बाहर निकालता है तो एक पूजा की जाती है।

एकान्तवास अधिक कड़ा न होने की हालत में द्वार पर एक पताका गाड़ दी जाती है और इसमें उन लोगों का नाम लिखा रहता है, जिन्हें त्साम्सपा से मिलने की आज्ञा उसके गुरु की ओर से होती है। जो लोग जीवन भर के लिए अपने को त्साम्स-खाङ् में बन्द कर लेते हैं उनके दरवाज़े पर निशान के लिए एक सूखी टहनी भूमि में ही खोंस दी जाती है।

त्साम खाङ् प्राय: गुम्बाओं के आसपास ही ध्यान करने के लिए बने हुए कुटीरों के अर्थ में प्रयुक्त होता है। इनसे दूर निर्जन स्थानों में बने हुए आश्रम-स्थलों को 'रितोद्' कहते हैं।

रितोद् कभी भी पहाड़ियों के तले निम्नप्रदेश में नहीं बनाये जाते। ये हमेशा ऊपर किसी जँचनेवाली जगह पर होते हैं। इनकी स्थिति भी निर्धारित नियमों के अनुसार पसन्द की जाती है। एक मशहूर तिब्बती कहावत भी है—

ग्याब् री ताग्

दुन री त्सो

अर्थात् रितोद् किसी पहाड़ी पर ऐसी ऊँची जगहों पर बनाये जावें जहाँ उनके पीछे पहाड़ी चट्टानें हों और आगे सामने कोई पहाड़ी सोता हो।

रितोद्-पा (रितोद्वाले) न तो उतना कठिन जीवन ही व्यतीत करते हैं, जितना त्साम्सपा, और न ये लोग अँधेरे कमरे में बन्द होना ही ज़रूरी समझते हैं। इस प्रकार के—मनुष्यों की बस्ती

से दूर—पुराने ढाँचे के बने हुए घरों में धार्मिक प्रवृत्ति के महत्त्वाकांक्षी कट्टर लामा नालजोर्पा वास करते हैं। कहना नहीं होगा कि सभी त्साम्सपा और रितोदूवासी ऋषि और महात्मा नहीं होते। व्यर्थ के ढोंग, झूठे और पाखण्डी साधु बहुत पहले से तिब्बती साधुओं की जमात में मिले हुए हैं। गोमछेन के आवरण में कई घूमते हुए ठग सीधे-सादे देहातियों और भोले-भाले गड़ेरियों को तरह-तरह के लालच देकर उनकी आँखों में धूल झोंकते और अपना उल्लू सीधा करते हैं। एक पश्चिम की ओर का व्यक्ति कह सकता है कि थोड़े-बहुत नाम के लिए या कुछ पैसों के लालच में आकर इनमें से बहुत कम लोग साधुओं का सा रूखा और कड़ा जीवन व्यतीत करने के लिए राज़ी होते होंगे। लेकिन इसे तिब्बती पहलू से देखना चाहिए। पाश्चात्य दृष्टिकोण से यह ज़रूर कुछ मँहगा पड़ता है।

पश्चिम के लोगों का विश्वास है कि कोई आदमी अधिक काल तक अकेला बिना किसी से बोल-चाल चुपचाप नहीं रह सकता और कोई अगर ऐसे दुस्तर कार्य को करने का दु:साहस करेगा तो या तो वह एकदम मूर्ख ही बन जायगा या सिड़ी हो जायगा।

लेकिन ये तिब्बती संन्यासी बीस-बीस तीस-तीस वर्ष तक अकेले बिना किसी से बोल-चाल एकान्तवास निभा देते हैं। और फिर भी पागलपन का उनमें लेशमात्र भी आभास नहीं आता। यह कोई आश्चर्यजनक बात नहीं है। सम्भवत: पश्चिमवासियों की उपर्युक्त धारणा लाइट-हाउस के पहरेदारों, भग्न-पोत के बचे हुए—सुनसान द्वीपों में जा पड़नेवाले—यात्रियों या बन्दीगृह में डाल दिये हुए क़ैदियों की कहानियों पर निर्भर है। आज तक मैंने किसी तिब्बती को यह कहते हुए नहीं सुना कि उसे आरम्भ के दो-चार दिन भी काटने में कठिनाई पड़ी हो या उसने कुछ

सूनेपन का अनुभव किया हो। वास्तव में इन्हें अपने अकेले होने का अनुभव ही नहीं होता। बहुत सी बातें उनके ध्यान को बँटाये रखती हैं। उन्हें अपने काम की चीज़ों के अतिरिक्त और कुछ सोचने का अवकाश ही नहीं मिलता।

अपने एकान्तवास के समय में ये त्साम्सपा या रितोद्पा जिन अभ्यासों में व्यस्त रहते हैं वे एक नहीं अनेक हैं और भिन्न-भिन्न प्रकार के होते हैं। उन्हें इकट्ठा करके उनकी एक सूची बना देना एक असम्भव सी बात है; क्योंकि इनमें से बहुतों को आज तक संसार का कोई एक ही व्यक्ति जान सकने में असमर्थ रहा है।

इनमें से बहुतेरे तो अपना समय एक मन्त्र के हज़ारों नहीं बल्कि लाखों बार के जाप में ही बिता देते हैं। कभी-कभी यह संस्कृत भाषा का कोई मन्त्र होता है जिसका एक शब्द भी उनको समझ में नहीं आता और कभी-कभी तिब्बती भाषा का ही कोई सूत्र होता है जिसका अर्थ भी बहुधा उनकी समझ से बाहर ही रहता है।

सबसे अधिक प्रचलित मन्त्र वही 'ओं मणि पद्मे हुं' वाला है। लगभग सभी विदेशी यात्रियों और लेखकों ने अपनी पुस्तकों में इस मन्त्र का उल्लेख किया है, पर शायद ही इनमें से किसी एक ने इसका असली तात्पर्य समझा हो। आज तक अधिकांश पाश्चात्य विद्वान् पहले अक्षर 'ओं' का अनुवाद सामान्य विस्मय-सूचक शब्द 'आह' (Ah !) में करते आये हैं और अन्तिम शब्द 'हुं' का मतलब आमीन (Amen) लगाते हैं।

एक 'ओम्' शब्द के अर्थों पर भारतवर्ष में बहुत सा साहित्य मौजूद है। इसमें लौकिक, अलौकिक और पारलौकिक सभी प्रकार के अर्थ आ जाते हैं। ओम् का अभिप्राय त्रिदेव (ब्रह्मा, विष्णु और महेश से हो सकता है। इससे ब्रह्माण्ड का, अद्वैत-

मतावलम्बियों के एकेश्वरवाद का तात्पर्य हो सकता है। इसका अर्थ परमपुरुष होता है और यह योगशास्त्र का अन्तिम शब्द भी है जिसके उच्चारण करने के बाद फिर सब कुछ निःशब्द है। श्री शङ्कराचार्य के मतानुसार यह समस्त स्मरण-चिन्तन का एकमात्र आधार है। ओम् वह शब्द है जिसके ठीक उच्चारण से समाधिस्थ योगी योग की चरम सीमा पर पहुँचकर ब्राह्मी स्थिति में प्रवेश कर जाता है और जिसके सहारे वह लौकिक और पारलौकिक ऐश्वर्यों की प्राप्ति सहज ही कर सकता है।

ओं, हुं और फट् ये तीनों संस्कृत शब्द तिब्बतियों ने भारतवासियों से लिये हैं। किन्तु न तो वे इनके वास्तविक अर्थ से परिचित हैं और न उन्हें यही पता है कि भारतीय योगशास्त्र में इन शब्दों का कितना महत्त्वपूर्ण स्थान है। वे तो केवल यही जानते हैं कि इन शब्दों में अद्भुत प्रभावशालिनी शक्ति है। और इसी लिए उन्होंने इनका प्रयोग अपने हर एक धार्मिक और ऐन्द्रजालिक मन्त्रों के साथ कर भर दिया है।

पूरे मन्त्र 'ओं मणि पद्मे हुं' के कई अर्थ हैं। सबसे सीधा और आसान मतलब इस प्रकार है—'मणि पद्मे' का संस्कृत में अर्थ होता है 'कमल में रत्न'। 'कमल' संसार है और 'रत्न' स्वयं तथागत बुद्ध भगवान् की शिक्षाएँ हैं। 'हुं' एक प्रकार का युद्ध में ललकारने का शब्द है। ललकारा किसे जाता है—कौन अपना शत्रु है ? इसकी व्याख्या लोग अलग-अलग अपनी बुद्धि के अनुसार करते हैं। कोई-कोई इसे भूत-प्रेतों के लिए समझते हैं। कोई क्रोध, तृष्णा, घृणा, मोह और दम्भ आदि मानसिक विकारों को ही अपना शत्रु मानते हैं। एक माला होती है और वह इसी मन्त्र को पढ़ते पढ़ते १०८ बार फेरी जाती है। एक फेरा पूरा होने पर 'ह्रीः' शब्द का उच्चारण किया जाता है।

'ह्रीः' का अर्थ कुछ लोग कृत्रिमता से ढँकी हुई आन्तरिक वास्तविकता से लगाते हैं।

साधारण बुद्धि के लोग विश्वास करते हैं कि 'ओं मणि पद्म हुं' का जाप करने से निस्सन्देह वे स्वर्गलोक में वास पावेंगे।

जो और मतिमान् होते हैं वे बतलाते हैं कि इस मन्त्र के छहों शब्द छः जीवधारियों से सम्बन्ध रखते हैं और अध्यात्मवाद-विषयक छः रंगों का आशय प्रकट करते हैं।

'ओम्' श्वेतवर्ण है और देवताओं (ल्हा) के अर्थ में आता है। 'म' नीलवर्ण है और इसका सम्बन्ध असुरों (ल्हामयिन) से है। 'णि' पीला है और मनुष्यों (मी) के अर्थ में आता है। 'पद्' हरा है और इसका आशय जानवरों (त्यूदो) से होता है। 'मे' लाल है। इसका अर्थ होता है वे लोग जो मनुष्य नहीं हैं (यिदाग* या मि-मा-यिन†)। 'हुं' काला वर्ण जिसका अर्थ नरक में रहने-वाले प्राणियों से है।

इस प्रकार का अर्थ लगानेवाले तत्त्वविज्ञों का कहना है कि इस मन्त्र के जाप से मनुष्य छः योनियों में से किसी में जन्म नहीं लेता, अर्थात् परम मोक्ष पा जाता है।

'ओं मणि पद्मे हुं' के अतिरिक्त और भी कई मन्त्र हैं; जैसे 'ओं वज्रसत्त्व' या 'ओं वज्र गुरु पद्मसिद्धि हुं'...आदि।

---

* यिदाग लोगों का शरीर पर्वत के आकार का होता है और गर्दन सूत के इतनी पतली होती है। ये बड़े अभागे जीव होते हैं और इन्हें सदैव भूख-प्यास सताती रहती है। जब ये जल के पास पहुँचते हैं तो पानी आग की लपटों में बदल जाता है। हर सुबह तिब्बती इन्हें अभिमन्त्रित जल चढ़ाते हैं जो आग में नहीं बदलता।

† इस श्रेणी में गन्धर्व, किन्नर, दैत्य इत्यादि आते हैं।

बड़े मन्त्रों में से जो सबसे अधिक प्रचलित है, वह शुद्ध तिब्बती भाषा में है। उसमें संस्कृत का कोई शब्द नहीं है। इस मन्त्र का नाम 'क्याबदो' है और इसका जाप शुरू-शुरू में एक लाख बार करने का विधान किया गया है। इसके साथ-साथ इतने ही बार दण्ड-प्रणाम करने का आदेश है।

तिब्बती लोग श्रद्धा प्रकट करने के लिए प्रणाम दो प्रकार से करते हैं। पहला ढंग तो चीनी तरीक़े 'कोवोतोवो' से मिलता-जुलता है और दूसरा है भारतीय प्रथा के अनुसार साष्टांग प्रणाम जिसे ये लोग 'म्याङ्चग' कहते हैं। धार्मिक अवसरों पर यही पिछला प्रकार व्यवहार में आता है।

इन मन्त्रों का जाप करने के अतिरिक्त लामा संन्यासी प्राणायाम और योगशास्त्र से सम्बन्ध रखनेवाली बहुत सी क्रियाएँ अपने त्साम-वास की अवधि में सीखते हैं। बहुत से क्यिल्-क्होर खींचने का भी अभ्यास होता है। इनका सीखना ज़रूरी होता है; क्योंकि लगभग सभी प्रकार के तान्त्रिक उपचारों में इनका काम पड़ता है।

क्यिल्-क्होर काग़ज़ या कपड़े पर बनी हुई या पत्थर, धातु अथवा लकड़ी पर खुदी हुई शकलें हैं। कुछ शकलें छोटी-छोटी पताकाओं, देवस्थान के दियों और अन्न, जल आदि से भरे हुए पात्रों से भी बनाई जाती हैं। एकाध मन्दिर में मैंने सात-सात फुट के दायरे में बने क्यिल्-क्होर देखे हैं। यद्यपि 'क्यिल्-क्होर' का अर्थ 'वृत्त' होता है, लेकिन बहुत सी शकलें चौकोर भी होती हैं। वे क्यिल्-क्होर जिनका उपयोग जादूगर लोग किसी देवता या दानव को वश में लाने के लिए करते हैं, साधारण रीति से त्रिकोण होते हैं।

इन अभ्यासों के अतिरिक्त मस्तिष्क को एक ही ओर आकृष्ट रखने के लिए और चित्त को एकाग्र करने के लिए भी यथेष्ट परिश्रम किया जाता है।

लगभग सभी बौद्ध देशों में मन की एकाग्रता पर बहुत काफ़ी ज़ोर दिया गया है। लंका, स्याम और बर्मा में तो इसके लिए एक प्रकार का यन्त्र, जिसे 'काशिनस' कहते हैं, प्रयोग में लाया जाता है। ये यन्त्र और कुछ नहीं, रंग-बिरंगी मिट्टी की बनी हुई रिकाबियाँ रहती हैं या पानी से भरा हुआ कोई गोलाकार छोटा सा बर्तन। कभी-कभी काशिनस प्रज्वलित अग्नि ही होती है जिसके आगे गोल सूराख़ किया हुआ एक काला सा पर्दा होता है। इनमें से कोई एक वृत्त चुन लिया जाता है और उसी पर बराबर दृष्टि गड़ाकर देखते हैं। देखते रहने के साथ ही बीच-बीच में आँखें मूँद ली जाती हैं और जब नेत्र बन्द कर लेने पर भी वैसा ही वृत्त आँखों के सामने बना रहे तो समझ लेना चाहिए कि सफलता मिल रही है।

तिब्बती लोगों का कहना है कि सामने रखकर देखने के लिए कोई भी पदार्थ चुना जा सकता है। जो वस्तु किसी के ध्यान और विचारों को आकर्षित कर सके, वही ठीक समझी जानी चाहिए।

इस सम्बन्ध की एक कहानी तिब्बती धार्मिक जनता में इतनी अधिक प्रचलित है कि शायद ही किसी के कान में पड़ने से बची हो—

एक अधेड़ उम्र के युवक ने किसी संन्यासी से शिष्य बना लेने की प्रार्थना की। गुरु लामा ने पहले उसे अपने चित्त को एकाग्र करने का आदेश दिया। उन्होंने पूछा—"तुम बहुधा कौन सा काम करते हो?" युवक ने उत्तर दिया—"प्रायः मैं पहाड़ियों पर याक चराया करता हूँ।"

"बहुत अच्छा।" संन्यासी ने कहा—"तुम याक को ही ध्यान में देखो।"

युवक तुरन्त उल्टे पाँव वापस लौटा और उसने अपनी छोटी अँधेरी कोठरी में बैठकर याक को ध्यान में देखना आरम्भ किया।

कुछ दिनों के बाद गुरु लामा अपने नये शिष्य के पास गये और उन्होंने बाहर से उसका नाम लेकर पुकारा।

"जी, आया", और तत्काल युवक अपना आसन त्यागकर उठ बैठा; "लेकिन गुरुजी बाहर आऊँ कैसे? इस दरवाज़े में मेरे तो सींग उलझ जायँगे।"

बात यह थी कि उसने चित्त को एकाग्र करके ध्यान लगाया था। अपने को भी इस काम में वह एकदम भूल बैठा था। उसे तो बस एक धुन थी, एक ख़याल था और जल्दी में वह अपने को ही सींगदार जानवर समझ बैठा था।

तिब्बती लोग धर्म-विषयक सभी बातों को बड़े सम्मान और श्रद्धा की दृष्टि से देखते हैं। पर मालूम होता है, उनके स्वभाव में हास्यप्रियता का अंश यथेष्ट मात्रा में मिला हुआ है।

नीचे की कहानी मुझे गार्टोंग के एक नालजोर्पा ने बतलाई थी–

एक गुरुभक्त शिष्य कई वर्ष अपने गुरु लामा के पास अध्ययन में बिताकर अपने घर को वापस लौट रहा था। रास्ते में उसने समय का समुचित उपयोग करने के लिए ध्यान करना शुरू किया। चलते रहने के साथ ही उसने तिब्बती शिष्टाचार के अनुसार यह कल्पना की कि उसके गुरु लामा उसके सर पर बैठे हुए हैं।

थोड़ी देर के बाद वह किसी चीज़ से ठोकर खाकर बिलकुल औंधे मुँह गिर पड़ा। लेकिन वह इतने गहरे ध्यान में डूबा हुआ था कि उसकी विचार-शृंखला तनिक भी न टूटी। वह शीघ्र ही क्षमा माँगता हुआ उठ खड़ा हुआ—"रिम्पोछे, क्षमा कीजिए। मुझसे चूक हुई। मैंने अनजान में यह अपराध किया। आप कैसे गिर गये? किधर गये? आपके चोट तो नहीं......आदि

आदि"। और श्रद्धा-पूर्ण शिष्य एक गुफा में दौड़कर झाँकने लगा कि कहीं उसके गुरु लामा लुढ़कते-लुढ़कते वहाँ तो नहीं जा पहुँचे!

'सर पर बैठे हुए लामा' के बारे में एक दूसरी कहानी, जो मुझे एक डुग्पा* लामा ने बतलाई, इससे भी अधिक मज़ेदार है। वह थोड़ी सी भोंड़ी ज़रूर है, पर उससे पहाड़ी चरवाहों की मनोवृत्तियों का पता भली भाँति लग जाता है।

एक अनी (भिक्षुणी) को उसके आध्यात्मिक गुरु ने ध्यान करने का आदेश दिया और कहा कि अपने ध्यान में इस बात की कल्पना करना कि सर पर स्वयं गुरु लामा बैठे हुए हैं। अनी ने ऐसा ही किया और अपने ध्यान में उसे ऐसा अनुभव हुआ कि मारे बोझ के वह दबी जा रही है। गुरु लामा हट्टे-कट्टे मोटे शरीर के आदमी थे और वह उनका बोझ अधिक समय तक न सँभाल सकी। हमें मानना पड़ेगा कि सभी देशों की स्त्रियाँ मुसीबत से जल्दी से जल्दी छुटकारा पाने के लिए पुरुषों की अपेक्षा अधिक चतुराई दिखा सकती हैं।

वह जब दुबारा अपने गुरु लामा से मिली तो लामा ने उससे पूछा कि हमारी उस आज्ञा का पालन किया था, या नहीं?

"किया था", अनी ने उत्तर दिया—"लेकिन रिम्पोछे आपका बोझा इतना भारी हो गया कि कुछ देर के बाद मैंने आपसे जगह बदल ली थी। मैं स्वयं आपको नीचे करके आपके सर पर सवार हो गई थी।"

चित्त को एकाग्र करने के लिए अनेक प्रकार के साधन होते हैं। आम तौर पर कोई एक प्राकृतिक दृश्य चुन लिया जाता है। सुविधा के लिए समझ लीजिए वह एक उद्यान है। इस उद्यान को माणवक अपने ध्यान में स्पष्ट देखता है। बग़ीचे में जितने

---

* भूटान का रहनेवाला।

प्रकार के फूल हैं, जिस-जिस रङ्ग की उनकी पँखुड़ियाँ हैं, जहाँ-जहाँ जो-जो पैाधे लगे हैं, हर एक डाल, हर एक पेड़ और फुलवाड़ी को, प्रत्येक वस्तु के।, वह प्रत्यक्ष अपने सामने लाने का प्रयत्न करता है। और जब पूरा-पूरा दृश्य उसके नेत्रों के सामने आ जाता है तब वह धीरे-धीरे एक-एक करके सब पदार्थों को कम करता जाता है।

थोड़ी देर के बाद फूलों का रङ्ग फीका पड़ने लगता है; और धीरे-धीरे उनका आकार छोटा होता जाता है। अब वे बिलकुल नन्हें से होकर धूल में परिणत हो जाते हैं और तब यह धूल भी आँखों से ओझल हो जाती है।

कुछ देर बाद सिर्फ़ ज़मीन रह जाती है। और अब इस ज़मीन में से भी ईंटों के टुकड़े और मिट्टी के ढेले ग़ायब होने शुरू होते हैं। यहाँ तक कि अन्त में उद्यान और वहाँ की सारी भूमि भी लुप्त हो जाती है।

कहते हैं, इस प्रकार के अभ्यासों से साधक लोग अपने मस्तिष्क से सब प्रकार की वस्तुओं के स्थूल आकार और सूक्ष्म पदार्थों के विचारों को दूर ही रखने में सफलता प्राप्त करते हैं।

कुछ साधक और कुछ नहीं तो आकाश ही पर ध्यान जमाते हैं। आकाश की ओर ऊपर मुँह करके ये लोग भूमि पर चित्त लेट जाते हैं और शून्य आकाश में किसी एक स्थान पर एकटक होकर दृष्टि गड़ाये रखते हैं। इस प्रकार के ध्यान और उनसे जो विचार मस्तिष्क में आते हैं उनसे, कहा जाता है कि, साधक एक विचित्र प्रकार की समाधि की अवस्था में पहुँच जाता है जिसमें वह अपने आपको एकदम भुलाकर स्वयं विश्वमय होने का अद्भुत अनुभव करता है।

मालूम होता है कि तिब्बतवासी विशेषकर दोगछेन सम्प्रदाय के लोग भारतीय योगशास्त्र के सिद्धान्तों की भी थोड़ी-बहुत

जानकारी रखते हैं। हिन्दुओं को प्राचीन, शरीर में षट्चक्रों के होनेवाली, बात से मिलती-जुलती हुई तिब्बतियों की 'खॉर लोस' वाली धारणा है। 'खॉर लोस' (इन्हें कभी-कभी 'कमल' भी कहते हैं) शरीर में शक्ति के विविध केन्द्र हैं। प्रायः इन्हीं केन्द्रों को एक-एक करके शक्ति से आपूरित करने का उद्देश्य इस क्रिया में रहता है। सबसे ऊपर (ब्रह्माण्ड में) डैाबृतैाङ् (सहस्रदल कमल) रहता है और इस केन्द्र तक शक्ति को पहुँचाना साधक का अन्तिम ध्येय होता है।

चीनियों के त्सान साम्प्रदायिकों का मत कुछ मिलते-जुलते तिब्बती सिद्धान्तों का प्रतिपादन करता है। अपने इन विचारों को ये इस प्रकार की उलटवासियों में प्रकट करते हैं—

"यह देखो, समुद्र से धूलि के बादल उठ रहे हैं और भूमि पर लहरों की भीषण गर्जना सुनाई पड़ रही है।

"मैं पैदल चल रहा हूँ पर यह क्या मैं तो एक बैल की पीठ पर सवार हूँ।

"जब मैं पुल के पास पहुँचता हूँ तो पानी तो बहता नहीं, पुल ही बहता-बहता आगे को बढ़ रहा है।

"ख़ाली हाथ मैं जाता हूँ फिर भी मेरे हाथों में यह फावड़े का बेंट है।......" आदि आदि।

तिब्बत देश में प्रायः एक प्रश्न लोगों के मुँह से सुनने में आता है। उसका उल्लेख मैं यहाँ कर रही हूँ—

एक पताका हिल रही है। हिलनेवाली वस्तु क्या है? पताका या वायु?

इसका उत्तर है हिलनेवाली वस्तु न तो पताका है और न वायु। सच पूछो तो वह तुम्हारा मस्तिष्क है।

मुझे पता नहीं इस प्रकार के विचार तिब्बतवासियों ने कहाँ से लिये हैं। और यद्यपि एक लामा ने मुझसे बतलाया भी कि बोनपा इन सिद्धान्तों की शिक्षा तिब्बतवासियों को पद्मसम्भव के तिब्बत में आने के बहुत पहले* ही दे चुके थे, लेकिन मेरा अनुमान है कि ये विचार तिब्बत में नैपाल से होकर चीन या भारतवर्ष से ही आये हैं।

मस्तिष्क की स्थिरता और चित्त की एकाग्रता की परीक्षा के लिए तिब्बतवासियों ने एक विलक्षण तरकीब ढूँढ़ निकाली है। मिट्टी या पीतल के छोटे-छोटे दिये मक्खन से भरकर ध्यान लगानेवाले के सर पर रख दिये जाते हैं। इनमें एक बत्ती पड़ी जलती रहती है। साधक ध्यान लगाये बैठा रहता है। ज्योंही यह दिया सिर पर से खसककर नीचे गिरा त्योंही समझ लिया जाता है कि साधक पूर्ण रूप से अपने मन को वश में कर सकने में विफल रहा है।

कहते हैं कि एक लामा ने अपने किसी शिष्य की परीक्षा लेने के लिए इसी प्रकार का एक दीपक उसके सिर पर रात को रख दिया और उसे ध्यानावस्थ हो जाने की आज्ञा दी। दूसरे दिन सबेरे वे जाकर देखते क्या हैं कि शिष्य उसी प्रकार पालथी मारे चुपचाप बैठा हुआ है और चिराग़ उसके बग़ल में नीचे ज़मीन पर सँभालकर रक्खा हुआ है। मक्खन समाप्त हो गया था और बत्ती बुझी हुई थी। बेचारे शिष्य ने इस अभ्यास का असली मतलब तो समझा नहीं था। उसने सच-सच बता दिया कि जब मक्खन के ख़तम हो जाने पर चिराग़ गुल हो गया तो मैंने स्वयं उसे उतारकर पृथ्वी पर रख दिया था। जब गुरु लामा ने उससे पूछा—"अगर तुम ध्यान में थे तो तुम्हें इसी बात का पता क्योंकर चला

---

* अर्थात् तिब्बत में बौद्ध धर्म के आविर्भाव के पहले।

कि चिराग़ बुझ गया है या तुम्हारे सर पर कोई चीज़ भी रक्खी हुई है ?" तब कहीं जाकर उसे अपनी मूर्खता का पता चला।

कभी-कभी चिराग़ के बजाय पानी भरकर कोई छोटा सा प्याला भी रख देते हैं।

चिराग़ या प्याले से सम्बन्ध रखनेवाली बहुत सी छोटी-छोटी कहानियाँ पूर्व के सभी देशों में प्रचलित हैं। भारतीय साहित्य में इनकी संख्या बेशुमार है। एक यहाँ पर दी जाती है—

किन्हीं ऋषि का कोई शिष्य था, जिसकी आध्यात्मिक उन्नति पर स्वयं उन्हें बड़ा गर्व था। इस विचार से कि उनके प्रिय शिष्य की शिक्षा में अगर कोई कोर-कसर रह गई हो तो वह भी पूरी हो जाय, उन्होंने उसे यशस्वी राजर्षि जनक के पास भेजा। जनक ने उस शिष्य के हाथ में एक प्याला दिया और उस प्याले में लबालब पानी भर दिया गया। शिष्य को इसी प्याले को हाथों में लिये हुए राजप्रासाद के एक बड़े कमरे के चारों कोनों तक घूम आने की आज्ञा हुई।

यद्यपि राजर्षि जनक संसार की समस्त विलास-पूर्ण सामग्रियों से विमुख थे, किन्तु तो भी उनके महल का ऐश्वर्य देवताओं के मुँह में पानी ला देता था। सोने और क़ीमती पत्थरों से जड़ी हुई दीवालें, वस्त्राभूषण से सुसज्जित दरबारी एक बार देखनेवालों की आँखों को चकाचौंध कर देते थे। अगल-बग़ल खड़ी हुई अर्धनग्न दिव्यांगनाओं को मात करनेवली नर्त्तकियाँ शिष्य की ओर कटाक्ष फेंक-फेंककर मुस्कराईं, हँसीं और उसका ध्यान आकर्षित करने के लिए और न जाने कौन-कौन सी चेष्टाएँ उन्होंने कीं; परन्तु शिष्य बराबर उसी प्याले पर अपनी दृष्टि गड़ाये रहा। और जब वह जनक के राजसिंहासन के पास फिर पहुँचा तो पानी ज्यों का त्यों था। एक बूँद भी प्याले के बाहर नहीं छलकी थी।

राजर्षि जनक ने उस शिष्य को यह कहकर कि तुम्हें अब किसी शिक्षा की ज़रूरत नहीं है, उसके गुरु के पास वापस भेज दिया।

शिष्य को जब ध्यान करने का काफ़ी अभ्यास हो गया तो उसके गुरु ने उसे अपने 'यिदाम्' (इष्टदेव को ध्यान में रखकर समाधिस्थ होने) की आज्ञा दी।

किसी एकान्त जन-शून्य स्थान में चेला बैठ गया। खाने के लिए दिन भर में केवल एक बार कुछ मिनटों के लिए वह अपना ध्यान तोड़ता था।

यिदाम् को ध्यान में रक्खे हुए, मन्त्रों का जाप करते करते और क्यिल्-क्होर बनाते-बनाते महीनों बल्कि सालों का अरसा बीत गया। और बराबर शिष्य को यही आशा बनी रही कि अब वह दिन आना ही चाहता है, जब उसका यिदाम् उसके सामने क्यिल्-क्होर में आकर प्रकट रूप से दर्शन देगा। नियमानुसार थोड़े-थोड़े समय के बाद गुरु लामा शिष्य से उसकी उन्नति के बारे में पूँछ-ताछ करते रहे। शिष्य ने बतलाया कि यिदाम् उसके क्यिल्-क्होर में प्रकट हुआ था ......और उसने अपने देवता को अपनी आँखों से देखा भी था, लेकिन यह झलक केवल दो-एक क्षण के लिए उसके सामने आकर फिर अदृश्य हो गई थी।

"बहुत ठीक", गुरु लामा ने कहा—"अब सफलता निकट है। साहसपूर्वक बढ़े चलो।"

कुछ दिन बाद यिदाम् क्यिल-क्होर प्रकट होकर फिर ग़ायब नहीं हो जाता था। वह सामने प्रकट रूप में बराबर अपने आकार में खड़ा रहने लगा। गुरु लामा ने कहा—"शाबाश! लेकिन तुम्हें इतने ही पर सन्तोष न कर लेना चाहिए। जाओ और फिर ध्यान लगाओ। तुम्हारा यिदाम् तुम्हारे सिर को छूकर तुम्हें आशीर्वाद देगा। तुमसे बोलेगा।"

कुछ दिनों के बाद यह फल भी प्राप्त हो गया। और कुछ और समय के बाद यिदाम् शिष्य के साथ-साथ, जहाँ-जहाँ वह जाता था वहाँ-वहाँ, परछाईं की भाँति पीछे-पीछे लगा रहता था।

गुरु लामा प्रसन्नता के मारे फूले नहीं समाते थे। वे अपने योग्य शिष्य की पीठ ठोंककर कहने लगे—"बस, अब तुम्हारे सीखने योग्य मेरे पास कोई विद्या नहीं रह गई है। तुम्हें तुम्हारा प्राप्य प्राप्त हो गया है। तुम्हारे साथ-साथ मुझसे भी अधिक शक्तिशाली एक रक्षक लगा हुआ है।"

कुछ शिष्य लामा को धन्यवाद देकर गर्वपूर्वक अपने स्थान को वापस लौटते हैं। परन्तु कुछ ऐसे भी निकल आते हैं जो काँपते-काँपते अपने गुरु के चरणों में गिर पड़ते हैं और साफ़ शब्दों में अपना अपराध स्वीकार करते हैं कि उनके मन में कोई संशय उत्पन्न हो गया है या उन्हें मानसिक अशान्ति सताती रही है। उनका यिदाम् उनके सामने प्रकट अवश्य हुआ था। उसके चरणों में उन्होंने अपना मस्तक नवाया था और देवता ने उनके सिर को स्पर्श करके अपने मुख से आशीर्वचन भी कहा था, लेकिन उन्हें न जाने क्यों ऐसा लगता था कि यह सब भ्रम मात्र है। न तो कहीं कोई यिदाम् आया था और न कोई देवता उनसे बोला था। यह सब उनके अपने कल्पना-निर्मित चल-चित्र मात्र थे।

"बस-बस, यही तो सारी बात है। इसी को समझने की तुम्हें ज़रूरत थी। देवता, दानव और सम्पूर्ण सृष्टि और कुछ नहीं, दिमाग़ में रहनेवाली एक मृग-मरीचिका है जो मस्तिष्क में अपने आप प्रकट होती है और अपने आप ही मस्तिष्क में अन्तर्हित हो जाती है।"

ऐसे अवसरों पर गुरु लामा का प्रायः यही एक उत्तर होता है।

उपसंहार

ऋषियों और योगियों के इस बृहद् भूभाग ने आसपास के देशवासियों का ध्यान आज ही नहीं, सदियों से अपनी ओर आकृष्ट कर रक्खा है। गौतम बुद्ध के समय के बहुत पहले से ही भारतवासियों को हिमालय की ऊँची चोटियाँ पूत-भावनाओं से प्रेरित करती रही हैं। और आज भी उस समय की अनेक प्रचलित कहानियाँ विशाल तुषार-धवल गिरिराज के पीछे छिपे हुए कौतूहल-पूर्ण मेघाच्छादित परीदेश के बारे में भारतीय साहित्य में मिलती हैं।

चीन-निवासी भी तिब्बती मरुस्थल की विचित्रता से प्रभावित मालूम होते हैं। उनके सुप्रसिद्ध दार्शनिक (दानिशमन्द) ला-ओत्ज़े के बारे में कहा जाता है कि वे अपने बुढ़ापे में बैल पर सवार होकर इसी ओर कहीं आये थे। उन्होंने तिब्बत की सीमा को पार किया था और फिर वे वापस नहीं लौटे थे। ऐसी ही दन्त-कथा बोधिधर्म और उनके कुछ चीनी शिष्यों (त्सान साम्प्रदायिकों) के बारे में प्रसिद्ध है।

आज के ज़माने में भी बहुत से भारतीय यात्री कन्धों पर भारी-भारी बोझ लादे हुए तिब्बत में घुसने के लिए ऊँचे भयानक पहाड़ी रास्तों पर चढ़ते हुए देखने में आते हैं; जैसे खोये हुए से—किसी जादू के प्रभाव से—उधर खिंचते चले जा रहे हों। जब उनसे उस यात्रा का अभिप्राय पूछा जाता है तो वे यही उत्तर देते हैं कि और कुछ नहीं, उनकी अन्तिम इच्छा तिब्बत देश में जाकर मरने की है। बहुधा वहाँ की शीतल वायु, ऊँचा धरातल,

भूख और थकावट उनकी इस अभिलाषा की पूर्त्ति में सहायक होती है।

आखिर तिब्बत के इस अनोखे आकर्षण का कारण क्या है?

इसमें कोई सन्देह नहीं कि बहुत पुराने समय से ही जादूगरों और मायावी तान्त्रिकों ने तिब्बत देश को अपना घर बना रक्खा है और प्रतिदिन यहाँ तिलस्माती घटनाएँ घटती रहती हैं। प्रकृति ने इनके चारों ओर कठोर, शुष्क वातावरण उपस्थित करके इन्हें अन्य उच्च आकांक्षाओं से वञ्चित कर रक्खा है। इसी से मालूम होता है, इन्होंने अपनी सारी शक्ति एक दूसरे ही प्रकार की मायापुरी के निर्माण करने में लगा रखना ही ठीक समझा है। सब कहीं से निराश होकर ये स्वर्ग के उद्यानों में अपनी-अपनी पसन्द के नये फूलों के लगाने, हवाई महलों के बनाते और गिराते रहने में ही अपने दिन काट देते हैं।

तिब्बत जैसे देश में वामकी देवी के इन उपासकों के लिए सुविधाएँ भी अनेक हैं। सच पूछिए तो यहाँ की पहाड़ी घाटियाँ, रेतीले मैदान और अन्धकार-पूर्ण गुफाएँ इस देश के निवासियों के कल्पित देवलोक और मायापुरी से अधिक ही दुर्बोध और विस्मयकारी हैं।

किसी की लेखनी में वह जादू नहीं है कि वह तिब्बती प्राकृतिक दृश्यों की शानदार ख़ूबसूरती, मनमोहिनी छटा, शान्तिपूर्ण निःस्तब्धता और इतना गहरा असर डालनेवाले आकर्षण का सच्चा ख़ाका खींचने में कामयाब हो सके। यहाँ की सुनसान घाटियों को पार करते हुए अकेले यात्री को ऐसा लगता है कि वह विदेशी व्यक्ति है और उसे इस अज्ञात देश की सीमा के भीतर पैर रखने का कोई अधिकार नहीं है। एकाएक उसके पाँव अपने आप रुक जाते हैं और वह अपनी आवाज़ नीची करके शङ्कित नेत्रों से इधर-उधर

देखने लगता है कि कब जल्दी से जल्दी उसे पहला भाग्यवान् व्यक्ति, जिसे इस जादू के देश में रहने-टिकने का जन्मसिद्ध अधिकार प्राप्त है, मिले और वह अपनी इस अनधिकार-चेष्टा के लिए उससे क्षमा-याचना करके अपराध का बोझा सिर से उतार फेंके।

तो क्या यह कहें कि तिब्बत की प्रसिद्धि जिन कारणों से दूर-दूर के देशों तक पहुँची है, वह केवल मिथ्या भ्रम है? उनमें कोई तत्त्व नहीं है? नहीं। तब? तब सबसे सहल उपाय यह है कि तिब्बतियों की इन अलौकिक घटनाओं के विषय में अपनी जो निजी धारणाएँ हैं उन्हीं का सहारा लें, यद्यपि वे भी विचित्रता से ख़ाली नहीं हैं। तिब्बत भर में यह तो कोई नहीं कहता कि ऐसी घटनाएँ असम्भव हैं, लेकिन उनमें अलौकिकता का अंश मानने के लिए कोई तैयार नहीं होगा।

अलौकिक तत्त्व-वाद किस चिड़िया का नाम है—यह यहाँ कोई व्यक्ति नहीं जानता। तिब्बतवालों का कहना है कि इन अलौकिक घटनाओं के पीछे कोई असाधारण बात नहीं रहती। जिस तरह प्रतिदिन और सब चीज़ें हमारी आँखों के सामने होती नज़र आती है, उसी तरह ये भी हैं। प्राकृतिक नियमों की थोड़ी सी जानकारी और कुछ सावधानी की आवश्यकता होनी चाहिए और फिर जो जब चाहे तब, जैसे चाहे वैसे, करतब कर सकता है। दूसरे मुल्कों में जिन घटनाओं के होने में एक ऊपरी दुनिया की जीव-शक्तियों का हाथ होना स्वीकार किया जाता है वे, तिब्बती लामाओं के कहने के अनुसार, मानसिक प्रवृत्तियों से प्रभावित होनेवाली साधारण घटनाएँ हैं।

इन घटनाओं को तिब्बती दो हिस्सों में बाँटते हैं—

(१) वे घटनाएँ, जो अनजाने में एक या कई व्यक्तियों के मनोभावों से प्रभावित होकर घटती हैं। इस दशा में कर्त्ता को

इस बात का कोई अनुभव नहीं होता कि उसकी चेष्टा किसी अलौकिक घटना के घटित होने में किसी प्रकार सहायक हो रही है। मानी हुई बात है कि इसमें वह किसी सोचे हुए परिणाम को लक्ष्य में रखकर कार्य नहीं करता।

(२) वे घटनाएँ जो जान-बूझकर प्रभावित की जाती हैं और जिनका मतलब किसी निश्चित उद्देश्य की पूर्त्ति करना होता है। ये घटनाएँ प्रायः—हमेशा नहीं—एक ही व्यक्ति द्वारा प्रभावित की जाती हैं।

मानसिक प्रवृत्तियों और इच्छाशक्ति के द्वारा किसी घटना को घटित करने का गुरुमन्त्र है—अपने मन को एकाग्र करके समस्त चेतन शक्तियों को एक ओर लगा देना। आध्यात्मिक लामाओं का कहना है कि चित्त को एकाग्र कर लेने पर एक प्रकार की शक्ति उत्पन्न करनेवाली "लहरें" पैदा होती हैं, जिनका उपयोग भिन्न-भिन्न रूपों में किया जा सकता है। यह शक्ति (जिसके लिए तिब्बती लोगों का अपना शब्द "शग्स" या "त्साल" है) जब-जब कोई मानसिक या शारीरिक क्रिया घटित होती है, उत्पन्न होती है। और यह शक्ति जितनी अधिक होती है, जिस ओर संचालित की जाती है उसी प्रकार की अलौकिक घटना लोगों के देखने में आती है।

१—यह शक्ति किसी वस्तु में भर दी जाती है और जो व्यक्ति इन वस्तुओं को छू लेता है उसमें उसी प्रकार की शक्ति—वीरता, साहस, उत्साह आदि—भर उठती है। लामा लोग भाँति-भाँति की गोलियाँ, तावीज़ और यन्त्र इसी सिद्धान्त के आधार पर बनाते हैं और जो इन्हें अपने पास रखते हैं उनका विश्वास होता है कि वे और आसानी से सफलता, स्वास्थ्य, सिद्धि आदि प्राप्त कर सकते हैं तथा डाकुओं, भूतों और दुर्घटनाओं को दूर रखने में समर्थ होते हैं।

सबसे पहले लामा को नियमित रूप से समुचित खाद्य-पदार्थों से अपने आपको शुद्ध कर लेना होता है, फिर जिस वस्तु में उसे शक्ति भरनी है उसी में वह अपने समस्त विचारों को केन्द्रीभूत करता है। कभी-कभी इस काम में उसे महीनों लग जाते हैं और कभी-कभी जब काग़ज़ या पत्ते पर कोई क्यिल्-क्होर खींचना होता है तो पलक मारते यह काम होता है।

२—किसी वस्तु में शक्ति भरकर उसमें—समझ लीजिए—एक तरह की जान डाल देते हैं। उस बेजान चीज़ में एक तरह की गति करने की शक्ति आ जाती है और वह जान डालनेवाले के आज्ञानुसार काम कर सकती है।

इन शक्तियों का उपयोग ङ्गास्पा लोग तभी करते हैं जब उनका विचार किसी अभागे की जान ले लेने का होता है। उदाहरण के लिए एक छुरे को ले लीजिए। छुरे में यह जान फूँक करके उसे जिस आदमी की हत्या करनी होती है उसके सोने के बिस्तर के सिरहाने रख देते हैं। वह आदमी उस छुरे को वहाँ देखकर अचम्भे में आ जाता है। उसे हाथ में लेकर उसकी परीक्षा करता है। छुरे में जो 'शक्ति की लहरें' भरी गई हैं उनसे प्रभावित होकर वह व्यक्ति स्वयं छुरे से अपनी आत्महत्या कर लेता है और ङ्गास्पा का अभिप्राय सहज ही में सिद्ध हो जाता है।

३—कभी-कभी किसी वस्तु की सहायता के बिना ही शक्ति का प्रसार किया जाता है। लक्षित स्थान पर पहुँचकर वह अपना असर डालती है। कहा जाता है, इस उपाय से लामा लोग अपने दूर-दूर के शिष्यों को मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य और साहस इत्यादि से भरने में सफल होते हैं।

कुछ जादूगर लोग इस शक्ति का उपयोग एक दूसरे ही ढङ्ग पर करते हैं। शक्ति को वे किसी आदमी के पास भेज देते हैं

और जिसके पास यह 'लहर' जाती है उसकी भी हिम्मत, बहादुरी. चातुरी आदि लेकर जादूगर के पास फिर वापस आ जाती है। ये लोग इस तरकीब से अपनी ताक़त, उम्र, तन्दुरुस्ती आदि बढ़ा सकते हैं।

४—तिब्बती अध्यात्मवादियों का यह भी कहना है कि कुछ चतुर तान्त्रिकों में यह भी क्षमता होती है कि जिन वस्तुओं की कल्पना वे अपने दिमाग़ में करते हैं, उनकी सृष्टि भी कर सकते हैं—जैसे आदमी, जानवर, निर्जीव चीज़ें, हरे मैदान, पके खेत आदि।

यह सृष्टि केवल मायापूर्ण मृग-मरीचिका नहीं होती, वरञ्च इसका अपना अस्तित्व होता है। इसमें असलियत रहती है। उदाहरणार्थ एक माया का घोड़ा हिनहिनाता है, कुलाँचें भरता है। उस पर सवार आदमी रास्ते में घोड़े को रोककर नीचे उतरता है, सड़क पर मिलनेवाले यात्रियों से बातें करता है और फिर चल देता है। जादू का बना हुआ एक मकान सचमुच के आदमियों को अपनी छत के नीचे जगह देता है, आदि, आदि।

इस प्रकार की बातों का बेशुमार उल्लेख तिब्बती कहानियों में मिलता है। ख़ास तौर पर लिङ् के प्रतापी राजा गेसर की बहादुरी के विषय में तो ऐसी बहुत सी किंवदन्तियाँ प्रचलित हैं। युद्ध में राजा अपने विपक्षी के विरुद्ध बहुत से शत्रु खड़े कर देता है। माया के योद्धाओं, घोड़ों, नौकरों, सौदागरों, ख़ेमों, लामाओं आदि की रचना करता है और इनमें से हर एक जीते-जागते जीवधारियों की तरह बर्ताव करता है। युद्धभूमि में ये योद्धा उसी शूरता से शत्रु का लोहा लेते हैं जैसे सचमुच के वीर सैनिक।

यह सब का सब निरी कोरी कल्पना और बच्चों के बहलाने की कहानियों के सिवा और कुछ नहीं मालूम होता। इनमें से

९९ प्रतिशत पौराणिक उपाख्यानों से सम्बन्ध रखती हैं—हमें ऐसा ही मालूम पड़ता है। लेकिन जब-तब एकाध अलौकिक घटनाएँ सचमुच होती रहती हैं और कुछ ऐसे आश्चर्यजनक व्यापार हमारे देखने में आते हैं कि हमें उन पर अविश्वास करने का साहस नहीं होता।

पश्चिम के जो यात्री एक बार तिब्बती सीमा तक पहुँच चुके हैं और उन्होंने यहाँ के साधारण लोगों के अन्धविश्वास और धर्म-परायणता के बारे में अपनी कोई निजी धारणा बना ली है वे, मेरा विचार है, नीचे दी हुई दोनों कहानियों को पढ़कर बड़ा अचम्भा मानेंगे कि तिब्बत जैसे धार्मिक और सीधे-सादे देश के निवासी भी ऐसे युक्तिसङ्गत और बुद्धि को चकरा देनेवाले सिद्धान्तों में विश्वास करते हैं।

एक बार की बात है, एक सौदागर अपने क़ाफ़िले के साथ एक मैदान को पार कर रहा था। हवा तेज़ थी जो उसके सिर पर से उसकी टोपी उड़ा ले गई। इन लोगों में ऐसा विश्वास है कि अगर सिर पर से टोपी गिर पड़े तो उसके उठाने में बड़ा अप-शकुन होता है। अस्तु, उस सौदागर ने उस टोपी को वहीं वैसे ही छोड़ दिया।

टोपी वहाँ से उड़कर एक झाड़ी में जा पहुँची और काँटों में उलझकर वहीं रुक गई। फ़र लगी हुई वह बेशक़ीमत बढ़िया टोपी उसी झाड़ी में महीनों उलझी रहकर धूप और पानी सहते सहते अजीब सूरत की बन गई। यहाँ तक कि देखनेवाले उसे पहचान भी न सकते थे।

कुछ दिनों के बाद एक मुसाफ़िर उधर से निकला और उसने झाड़ी में भूरे रङ्ग की कोई चीज़ देखी। डरपोक और कमज़ोर दिल का होने के सबब से वह नीची आँखें किये हुए चुपचाप अपने

रास्ते पर चला गया। गाँव में पहुँचकर उसने लोगों से कहा कि उसने झाड़ी में 'कोई चीज़' देखी थी जिसके दो बड़े बड़े कान उसके पास पहुँचने पर खड़े हो गये थे।

गाँव के और लोगों ने उस 'चीज़' को आकर देखा और धीरे-धीरे प्रसिद्ध कर दिया गया कि उस मैदान की एक झाड़ी में कोई भूत रहता है—जानेवाले बचकर जायँ। लोग उधर से जाते तो उस ओर एक भयपूर्ण दृष्टि डाल लेते और साँस रोके हुए चुपचाप नीचा सिर किये अपना रास्ता पकड़ते।

इसके बाद फिर पास से जानेवालों ने साफ़ देखा कि वह 'चीज़' हिल रही है। दूसरे दिन उसने काँटों में से अपने को छुड़ा लिया और अन्त में सौदागरों के एक जत्थे के पीछे-पीछे हो लिया। भय से अधमरे बेचारे सौदागरों को पीछे मुड़कर देखने का भी साहस न हुआ। जान बचाने के लिए वे लोग सिर पर पैर रखकर भाग खड़े हुए।

टोपी में इतने आदमियों के विचारों के केन्द्रित हो जाने से एक प्रकार की जान आ गई थी।

यह कहानी, जिसे तिब्बती सच्ची घटना बतलाते हैं, केन्द्रीभूत विचारों की शक्ति और उन अलौकिक घटनाओं की, जिनमें कर्त्ता के लक्ष्य में कोई निश्चित उद्देश्य नहीं रहता, एक अच्छी मिसाल है।

दूसरी कहानी एक मरे हुए कुत्ते के दाँत के बारे में है जो तिब्बत भर में इतनी प्रसिद्ध हुई कि उसे लेकर एक मसल ही बन गई—

माँस गुस याँद ना
क्यी सो आँद तङ्।

अर्थात् अगर विश्वास की भावना है तो कुत्ते के दाँत से भी रोशनी पैदा हो सकती है।

एक व्यापारी हर साल माल लेने के लिए हिन्दुस्तान आता था। उसकी बूढ़ी माता हर बार उसे 'पवित्र धाम' से कोई न कोई चिह्न लाने का आग्रह करती थी और हर बार व्यापारी भूल जाता था। आख़िरी बार जब घर लौटते समय उसका रास्ता कुछ घण्टों का रह गया तो उसे अपनी बुढ़िया मा को माँगी हुई चीज़ की याद आई। उसे बड़ी लज्जा मालूम हुई और वह बिगड़ी बात बनाने के लिए कोई उपाय सोचने लगा।

एकाएक उसकी निगाह सड़क के किनारे पड़े हुए एक कुत्ते के टूटे जबड़े पर पड़ी। उसने उसे उठा लिया और उसमें से एक दाँत तोड़कर उसे धो-धाकर रेशम में लपेटा। फिर ले जाकर उसे अपनी भोली-भाली वृद्धा माता को सौंप दिया। उस बेचारी को पट्टी क्या पढ़ाई कि इससे बढ़कर मूल्यवान् चिह्न हो ही नहीं सकता था। वह स्वयं भगवान् सारिपुत्र* का दाँत था जो उसे भारतवर्ष के एक बड़े मन्दिर के किसी दयालु पुजारी ने प्रसाद के साथ दिया था।

बेचारी बुड्ढी प्रसन्नता के मारे फूली न समाई। अपने लायक़ बेटे की उसने लाख-लाख बलैयाँ लीं और सारिपुत्र के दाँत को एक चाँदी की डिबिया में बन्द कर उसे देव-गृह में वेदी पर रख दिया। रोज़ उसकी पूजा करती, घी के दिये जलाती, आरती उतारती और अड़ोस-पड़ोस की औरतें भी पूजा में उसका साथ देतीं। कुछ समय के बाद, कहते हैं, उसी दाँत से एक प्रकार के तेज की किरणें फूटकर निकलने लगी थीं।

इस कहानी में भी हमें तिब्बतियों की मानसिक विचारों के केन्द्रीकरणवाली धारणा की पुष्टि देखने को मिलती है। इन सबकी तह में वही बात है। सबका आधार वही हमारी इच्छा-शक्ति है।

---

* भगवान् गौतम बुद्ध के एक परम प्रिय शिष्य।

और इस तरह की कहानियों को सच्ची समझकर उनमें विश्वास कर लेना उन लोगों के लिए कोई बड़ी बात नहीं है जो हमारे इस संसार को भी एक प्रकार का मिथ्या भ्रम ही मानते हैं।

अदृश्य हो सकने की क्षमता रखनेवाले योगियों का उल्लेख सभी देशों के क़िस्सों और कहानियों में मिलता है। इस विषय में भी तिब्बत-वासियों की अपनी निजी धारणा है। इसकी वजह वे बतलाते हैं—मस्तिष्क की समग्र क्रियाशीलता* का एकदम बन्द हो जाना—ठहर जाना।

इस धारणा के अनुसार अपने आपको लोगों की दृष्टि से छिपा लेने का सवाल नहीं होता, बल्कि लोगों की ही नज़र में कुछ अन्तर ला देना होता है। कोशिश इस बात की की जाती है कि अपने आसपास के लोगों के मस्तिष्क में अपने बारे में किसी क़िस्म के विचारों की 'लहर' न उठने पावे। इस तरकीब से लोगों को इस बात का अनुभव नहीं होता कि कोई उनके सामने से या पास से होकर निकल रहा है। और अगर थोड़ा-बहुत इस बात का अनुभव होता भी है तो वह बहुत कम—इतना कम कि कोई उसकी ओर देखने की परवा भी नहीं करता।

इसी बात को एक उदाहरण से समझिए। जब कोई व्यक्ति चलते समय बहुत ज़ोर का शब्द करते हुए चलता है, लोगों को धक्के देते हुए, चीज़ों को ठुकराते हुए या और किसी प्रकार की चेष्टा करता हुआ चलता है तो वह बहुत से लोगों के मस्तिष्क में बहुत प्रकार के इन्द्रिय-जनित 'बोध' पैदा करता चलता है। अगर कोई चुपचाप बग़ैर किसी को छुए हुए, बिना कोई शब्द पैदा किये हुए, अपने रास्ते पर चला जाय तो वह बहुत कम लोगों के

---

* इसके लिए तिब्बती शब्द है 'तोग्पा'।

मस्तिष्क में बहुत कम भाव या बोध पैदा करेगा और बहुत कम लोग उसे देख पायेंगे।

लेकिन कोई कितना भी चुपचाप चले, फिर भी मस्तिष्क की गति तो होती ही रहती है और इस गति की 'लहर' जिसे छूती है उस पर भी अपना असर किसी न किसी रूप में डालती है। तो भी लामा लोगों का कहना है कि अगर कोई दिमाग की हरकत को एकदम रोक दे तो वह दूसरे में कोई 'बोध' नहीं पैदा करता और इसलिए दूसरों के देखने में नहीं आता है।

पहले अध्याय में मृत्यु और परलोक-विषयक वर्णन में हम देख चुके हैं कि कुछ लोगों (डेलोग) की आत्मा कुछ समय के लिए शरीर से बाहर निकलकर न जाने कहाँ-कहाँ (बार्डो) घूम आती है, न जाने कौन-कौन से काम करती है और शरीर तब तक एक प्रकार से सोया हुआ पड़ा रहता है। कभी-कभी ये आत्माएँ दूसरी आत्माओं के शरीर में भी प्रवेश कर जाती हैं, वह शरीर जीवित प्राणियों की भाँति सारे कार्य करने लगता है और जब आत्मा उसे छोड़कर अपने शरीर में वापस आ जाती है तो फिर वह निर्जीव हो जाता है।

हिन्दुस्तान में इस तरह की बहुत सी कथाएँ प्रचलित हैं। सबसे ज्यादा मशहूर कहानी सुप्रसिद्ध वेदान्तवादी श्री शङ्कराचार्य के बारे में है। शङ्कराचार्य का एक बड़ा भारी प्रतिद्वन्द्वी था मण्डन मिश्र। मण्डन का कर्म-मीमांसा-शास्त्र* में पूरा-पूरा विश्वास

---

* इस सिद्धान्त के अनुसार मुक्ति केवल देव-पूजन, यज्ञ, हवन, पशुबलि तथा धर्मग्रन्थ के पठन-पाठन से प्राप्त हो सकती है। श्री शङ्कर का कहना था कि नहीं. मोक्ष का साधन केवल एक वस्तु है और वह है ज्ञान।

था और श्री शङ्कर बिलकुल इसके प्रतिकूल विचारों के थे। श्री शङ्कर ने मण्डन को शास्त्रार्थ के लिए आमन्त्रित किया। दोनों में यह तै हुआ कि शास्त्रार्थ में हारनेवाला जीतनेवाले का शिष्यत्व ग्रहण करेगा और उसे अपने गुरु की भाँति ही जीवन व्यतीत करना होगा।

इस समझौते के अनुसार अगर श्री शङ्कराचार्य हार जाते तो उन्हें अपना संन्यास त्याग करके विधिवत् विवाह करना पड़ता और गार्हस्थ्य-जीवन व्यतीत करना होता। और अगर उनकी जीत होती तो मण्डन को अपनी विवाहिता पत्नी का परित्याग करके गेरुआ बाना पहनकर संन्यास ग्रहण करना होता।

ऐसा हुआ कि मण्डन क़रीब-क़रीब हार ही रहा था और श्री शङ्कर के मण्डन को अपना चेला बनाने में थोड़ी ही कसर रह गई थी कि मण्डन की स्त्री भारती ने बीच में बाधा दी।

भारती पढ़ी-लिखी और बड़ी विदुषी स्त्री थी। उसने कहा—"हिन्दू-शास्त्रों के अनुसार पत्नी पति की अर्धाङ्गिनी है। दोनों एक हैं। तुमने हमारे स्वामी को तो पराजित कर दिया; लेकिन जब तक तुम मुझे भी शास्त्रार्थ में नहीं हरा देते तब तक तुम्हारी जीत अधूरी ही है।"

बात जँचती सी थी। शङ्कराचार्य्य निरुत्तर हो गये। उन्होंने भारती के साथ शास्त्रार्थ प्रारम्भ किया। भारती को एक चालाकी सूझी।

प्राचीन हिन्दू-शास्त्रकारों ने धर्म के अन्तर्गत काम-शास्त्र को भी एक प्रमुख स्थान माना है। भारती ने इसी विषय में कुछ प्रश्न किये जिनका उत्तर श्री शङ्कर, बाल-ब्रह्मचारी होने के कारण, न दे सके।

शङ्कराचार्य्य की बुद्धि चकरा गई और उन्होंने भारती के सवालों का उत्तर देने के लिए एक महीने की मुहलत माँगी। भारती सहमत हो गई और श्री शङ्कर ठीक एक महीने के बाद वापस लौटने का वचन देकर चलते हुए।

संयोगवश इसी समय मयूख नाम के किसी राजा का देहान्त हो गया था। उसके मृत शरीर को लोग दाह-संस्कार के लिए श्मशान की ओर लिये जा रहे थे। शङ्कराचार्य्य बहुत प्रसिद्ध संन्यासी थे। वे अपने असली वेश में, जिस शास्त्र में उनकी विद्या अधूरी थी उसकी शिक्षा नहीं ले सकते थे। उन्होंने देखा, मौका अच्छा है। चट उन्होंने अपनी आत्मा को उस शव के शरीर में पहुँचाया और राजा मयूख पुनर्जीवित हो उठा।

राजा के रनिवास में एक से एक बढ़कर सुन्दरी रानियाँ और वेश्याए थीं। उन सबकी प्रसन्नता की सीमा न रही। इनमें से बहुतों की ओर वृद्ध राजा ने बरसों से कोई ध्यान नहीं दिया था। जिस उत्साह और लगाव के साथ श्री शङ्कर ने भारती के सवालों का जवाब पढ़ना आरम्भ किया, उससे अन्तःपुर के सभी लोगों को बड़ा अचम्भा हुआ। उन्हें शङ्का हुई कि कहीं कोई सिद्ध तो स्वर्गीय राजा के शरीर का उपयोग नहीं कर रहा है। इस भय से कि कहीं फिर वह अपने शरीर में वापस न चला जाय, उन्होंने देश के कोने-कोने में डुग्गी पिटवा दी कि अगर कहीं भी किसी आदमी की लाश खोजने से पड़ी मिल सके तो उसे तुरन्त जलाकर राख कर दिया जाय।

उधर श्री शङ्कराचार्य्य के शिष्य, जिनके निरीक्षण में वे अपना शरीर छोड़ गये थे, अपने गुरु के ठीक समय तक वापस न लौटने पर बड़े आतुर हो रहे थे। उन्होंने भी ढिंढोरा सुना। उन्हें बड़ी

चिन्ता हुई। शव को एक गुप्त स्थान में रखकर वे अपने गुरु की खोज में तुरन्त निकल पड़े।

इधर शंकराचार्य्य अपने अध्ययन में इतने दत्तचित्त थे कि और सब बातें वे एकदम भूल गये थे। उन्हें भारती तक की सुधि न रही थी। लेकिन जब उनके शिष्यों ने पास पहुँचकर उन्हीं का बनाया हुआ एक पद गाकर सुनाया तो उन्हें चेत हो आया और तुरन्त वे राजा मयूख के शरीर का परित्याग करके अपनी देह में आ गये, ठीक उसी समय जब कि रनिवास से छूटे हुए नौकर-चाकर उसे चिता पर रखकर उसमें अग्नि का स्पर्श कराने ही जा रहे थे।

श्री शङ्कराचार्य्य एक बार फिर भारती के पास वापस आये। शास्त्रार्थ हुआ और उन्होंने उसे अपने श्रेष्ठ अनुभव-ज्ञान का सब प्रकार से परिचय दिया। भारती चकित रह गई। उसे अपनी हार माननी पड़ी।

तिब्बती अलौकिक घटनाओं के विषय में एक बहुत बड़ा ग्रन्थ अलग ही बनकर तैयार हो सकता है, लेकिन सिर्फ़ एक व्यक्ति की खोज में ये सब बातें कहाँ से आ सकती हैं। और वह भी तब जब कि तिब्बत में यात्रा करनेवाले विदेशियों के लिए सुविधाएँ बहुत कम हैं। मेरी बड़ी प्रबल इच्छा है कि मेरा यह वर्णन अन्य अनुभवशील यात्रियों के मन में इस विस्मय-पूर्ण जादू के देश की विचित्र बातों के पता लगाने और प्राचीन को अर्वाचीन के सामने रखने की उत्कण्ठा पैदा कर दे। जो बातें जहाँ-जहाँ जैसी मेरे देखने में आईं, उनका मैंने जो कुछ मुझसे बन पड़ा, इस पुस्तक के पिछले पन्नों में वर्णन कर दिया है।

छठे अध्याय में मैं मनोविज्ञान और इच्छा-शक्ति से सम्बन्ध रखनेवाली कुछ अलौकिक घटनाओं का उल्लेख कर चुकी हूँ और

इस अध्याय के आरम्भ में उनके तथ्य को समझने में सहायता पहुँचानेवाली तिब्बतवासियों की जो अपनी निजी धारणाएँ हैं, उनका भी संक्षिप्त रूप से परिचय दिया जा चुका है। अब यहाँ मेरे देखने में जो चमत्कार-पूर्ण बातें आईं उन्हें और साथ ही साथ अपने निजी अनुभव की कतिपय विस्मयकारिणी घटनाओं का उल्लेख करके मैं इस उपसंहार को समाप्त करूँगी।

(१) मेरे साथ एक तिब्बती नौकर था। वह किसी काम से तीन हफ़्ते की छुट्टी लेकर घर चला गया। अपने घर पहुँचने पर सगे सम्बन्धियों से मिलकर मालूम होता है वह आने की बात भूल गया। तीन हफ़्ते ख़तम हो गये और वांगदू का कहीं पता न था। मैं रोज़ उसके बारे में सोचती और हर रात को यह सोच-कर सो जाती कि दूसरे दिन वह प्रातःकाल ज़रूर आवेगा। लेकिन इसी तरह कई दिन आये और कई रातें गईं किन्तु वांगदू का आना न हुआ, न हुआ। मैंने समझ लिया, उसने अपनी नौकरी छोड़ देने का ही निश्चय कर लिया है।

इसके बाद एक रात को मैंने स्वप्न देखा कि वांगदू आ गया है पर एक नये ढङ्ग का लिबास पहने हुए है। उसके सिर पर जो टोपी है वह भी नई और विदेशी फ़ैशन की है।

दूसरे दिन सबेरे तड़के ही मेरे एक नौकर ने आकर सूचना दी—"वांगदू आ गया।" मैं अचम्भे में आ गई। स्वप्न इतनी जल्दी सच हुआ चाहता है! मैंने पूछा—"कहाँ है?"

उसने बतलाया—मैं अभी-अभी उसे देखता आ रहा हूँ। ख़ेमे से बाहर निकलिए। वहीं, उस सामने की घाटी में।

मैं गई। वांगदू को देखा भी। उसके सिर पर वैसी ही टोपी थी और सचमुच वह उसी लिबास में था, जिसमें मैंने उसे रात को सपने में देखा था। मैं लौटकर ख़ेमे में आई और वांगदू

की प्रतीक्षा करने लगी। वह नहीं आया। मैंने कुछ देर और रुककर नौकर को आगे जाकर ख़बर लाने की आज्ञा दी। उसने वापस लौटकर बतलाया कि कहीं किसी वांगदू का पता नहीं मिलता!

उसी दिन शाम को सूर्यास्त होने पर वांगदू एक क़ाफ़िले के साथ उसी घाटी में पहुँचा। वह बिल्कुल उसी लिबास में था जिसमें मैंने उसे रात को सपने और दिन को घाटी में देखा था। एक मिनट भी रुके बग़ैर मैं उन आदमियों के पास पहुँची और उनसे स्वयं प्रश्न किया। उनसे मालूम हुआ कि अभी सबेरे के समय तो वे लोग हमारे ख़ेमे से काफ़ी दूरी पर थे और वांगदू बराबर सबेरे से शाम तक उनके साथ रहा था।

बाद को मैंने और जगह पूछताछ की। क़ाफ़िले के रवाना होने की जगह और समय के बारे में दरियाफ़्त किया तो मालूम हुआ कि जो कुछ वांगदू और उसके साथी कह रहे थे वह सच्चा था।

(२) एक तिब्बती चित्रकार कभी-कभी मेरे पास आ जाता था। वह कुछ क्रोधी देवताओं की पूजा करता था। अपनी तस्वीरों में भी अक्सर इन्हीं को तरह-तरह के रूपों में दिखलाया करता था। एक दिन शाम को जब वह मेरे पास आया तो मैंने देखा एक धुँधली सी शकल—जिसकी सूरत उसी के चित्रों में से एक से हू-बहू मिलती-जुलती है—उसके पीछे-पीछे आगे को बढ़ रही है। मैंने सामने बढ़कर अपना एक हाथ उसकी ओर बढ़ाया तो ऐसा मालूम हुआ कि जैसे उँगलियों से कोई बड़ी मुलायम सी चीज़ छू गई हो। यह चीज़ मेरे स्पर्श करते ही ग़ायब हो गई।

पूछे जाने पर चित्रकार ने स्वीकार किया कि वह पिछले कुछ दिनों से उसी देवता को पास बुलाने के लिए एक डबथब कर रहा था जिसकी एक छाया-झलक मुझे देखने को मिली थी। और

उस दिन सबेरे का सारा समय उसने उसी का एक चित्र खींचने में लगाया था।

वास्तव में उसने स्वयं उस शक्ल को नहीं देखा था। उपर्युक्त दोनों दृष्टान्तों में घटनाएँ कर्त्ता की अपनी जानकारी में नहीं घटी हैं। या एक लामा के शब्दों में—वांगदू और चित्रकार को इन घटनाओं का कर्त्ता नहीं कहा जा सकता।

(३) एक तीसरी विचित्र घटना जो उस श्रेणी की अलौकिक घटनाओं की एक अच्छी मिसाल है जिनमें कोई आश्चर्यजनक व्यापार अपने आप हो जाता है। उसमें कारण का कोई मूल आधार नहीं रहता।

उन दिनों खाम प्रदेश में पुनाग रितोदू के समीप हमारा पड़ाव पड़ा था। एक दिन शाम को जहाँ हमारा खाना बनता था वहाँ मैं कुछ देखने गई थी। मेरे बावर्ची ने मुझसे कहा कि कुछ चीज़ें घट गई हैं। मेरे ख़ेमे से उसे मिलनी चाहिएँ। उसे साथ लेकर जब मैं अपने ख़ेमे में आई तो हम दोनों ने देखा कि आरामकुर्सी पर एक तपस्वी लामा बैठे हुए हैं। हमें कोई आश्चर्य नहीं हुआ क्योंकि ये लामा अक्सर मुझसे बातचीत करने आ जाया करते थे। बावर्ची भी यह कहकर चला गया—"रिम्पोछे ने आने का कष्ट उठाया है। जाऊँ, जल्दी से चाय बना लाऊँ। बाद को भोजन की सामग्री ले जाऊँगा।"

मैं आगे को बढ़ी। मेरी दृष्टि बराबर लामा की ओर थी जो अपनी जगह पर चुपचाप निश्चल बैठे हुए थे। जैसे ही मैं पास पहुँची, वैसे ही ऐसा मालूम हुआ जैसे सामने से कोई धुँधला सा पर्दा हट रहा हो या आँखों के आगे से कोई झिल्ली हट गई हो। और एकाएक मैंने देखा कि आरामकुर्सी ख़ाली पड़ी है--उस पर कोई नहीं है। तपस्वी लामा न जाने क्या हो गये। इतने में बावर्ची

चाय लेकर आ गया। उसे वहाँ मुझे अकेली देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ। लेकिन मैंने उसे नाहक़ डरा देना उचित नहीं समझा और उससे कह दिया कि "रिम्पोछे केवल मुझसे एक बात कहने आये थे। काम हो जाने पर वे चले गये। उन्हें जल्दी थी।"

काल्पनिक यिदाम्, जिनका बयान पिछले अध्याय में आ चुका है, दो मतलब हल करते हैं। एक से तो शिष्यों को यह शिक्षा मिलती है कि कहीं कोई भूत-प्रेत देवता-दानव आदि नहीं है और यदि है तो केवल उसकी अपनी कल्पना की सृष्टि में। दूसरे से नीचे दर्जे के जादूगर अपने लिए एक सामर्थ्यशाली अङ्गरक्षक का सामान करते हैं। इस विद्या की जानकारी रखनेवाले जादूगर जिस वेश में चाहें अपने को छिपा सकते हैं, जहाँ चाहें जा सकते हैं।

इन सब बातों को देख-सुनकर मेरे मन में भी यह बात आई कि मैंने इतने साल तिब्बतवासियों के साथ बिता दिये; उनके साथ कहीं कहीं मेरा बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध भी रहा है लेकिन इन बातों का मैंने स्वयं उतना अनुभव नहीं किया जितना मुझे करना चाहिए था। मैंने अपने अभ्यास शुरू किये और हर्ष का विषय है कि अपने प्रयत्नों में मुझे थोड़ी-बहुत सफलता भी मिली।

मैंने अपने लिए एक साधारण हँसमुख मोटे लामा को चुना और अपने को एक त्साम में बन्द करके ध्यान और अन्य आवश्यक उपचार करना आरम्भ किया। कुछ महीनों के अभ्यास के पश्चात् काल्पनिक लामा प्रकट हुआ। धीरे-धीरे उसका आकार साफ़ हो गया और वह जीता-जागता आदमी सा मालूम होने लगा। वह एक तरह से मेरा मेहमान हो गया और मेरे कमरे में मेरे साथ रहने लगा। तब मैंने अपना एकान्तवास तोड़ दिया और अपने नौकरों और ख़ेमे के साथ एक यात्रा के लिए रवाना हो गई।

मेरा मेहमान लामा भी हमारे गिरोह में आकर शामिल हो गया। मैं बाहर मैदान में थी, रोज़ मीलों तक घोड़े की पीठ पर ही रह जाती थी लेकिन लामा क़रीब-क़रीब हमेशा बराबर मेरे साथ बना रहता था। मेरे लिए अब यह भी ज़रूरी न रह गया कि मैं जब-तब उसके बारे में सोचा करूँ। छाया-लामा सचमुच के आदमियों की तरह चेष्टाएँ करता..... जैसे वह हमारे साथ चलता था, रुकता था और इधर-उधर देखने लगता था। कभी-कभी वह बिल्कुल साफ़ दिखाई पड़ता और कभी-कभी छिपा रहता था। मुझे बहुधा ऐसा लगता जैसे किसी ने मेरे कन्धे पर हाथ रख दिया हो या किसी का लम्बा लबादा मुझसे छू गया हो।

मैंने मोटे लामा का जो आकार अपनी कल्पना से बनाया था, धीरे-धीरे उसमें कुछ परिवर्त्तन होने लगा। मोटा, बड़े-बड़े गाल गालोंवाला वह हँसमुख लामा अब एक दुबला-पतला, पीले, सूखे चेहरे का एक छाया-लामा ही रह गया। वह मुझे अब और अधिक परेशान भी करने लगा। उसमें गुस्ताखी आ गई। थोड़े में समझिए, वह मेरे अधिकार से बाहर चला गया।

एक बार एक गड़ेरिया मेरे पास मक्खन देने आया। उसने इस तुल्प (छाया-लामा) को सचमुच का लामा समझ लिया।

मैंने इस तुल्प को समाप्त ही कर देना ठीक समझा। मैं ल्हासा जाने का भी विचार कर रही थी। इसलिए मेरा इरादा और पक्का हो गया। लेकिन इस काम में मुझे ६ महीने की कड़ी मेहनत करनी पड़ी। मेरा काल्पनिक लामा किसी भाँति अपनी जीव-लीला समाप्त करने को राज़ी ही नहीं होता था।

इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि मैं अपने छाया-लामा की सृष्टि करने में सफल हो सकी थी। एक ख़ास बात, जो ध्यान देने के योग्य है, यह है कि इस प्रकार के काल्पनिक आकार

केवल उनके बनानेवाले ही नहीं बल्कि और लोग भी अपनी आंखों से देखते हैं।

इन अलौकिक घटनाओं के विषय में तिब्बतियों में आपस में मतभेद है। कुछ का विचार है कि सचमुच किसी वस्तु का आकार-रूप स्थिति में आ जाता है और कुछ का कहना है कि कर्त्ता की विचार-शक्ति ही इतनी प्रबल होती है कि जिस आकार की वह सृष्टि करता है उसे दूसरे भी उसी प्रकार देख सकते हैं जिस प्रकार वह स्वयं।

तिब्बती लोगों का कहना है कि आध्यात्मिक दृष्टि से ऊंचे पहुँचे हुए लामा साधारण मनुष्यों की भाँति नहीं मरते। वे जब चाहें अपने शरीर का ऐसा परित्याग कर सकते हैं कि उनके पंचप्राणों के पंचतत्त्वों में मिल जाने पर उनकी देह का चिह्न भी न रह जाय।

सन् १९१६ में जब मैं शिगात्जे पहुँची तो आगामी बुद्ध मैत्रेय भगवान् का नया विशाल मन्दिर लगभग पूरा-पूरा बनकर अपनी समाप्ति पर था। ताशी लामा की इच्छा थी कि इस मन्दिर में मूर्त्ति की प्राण-प्रतिष्ठा स्वयं उनके आध्यात्मिक गुरु और धार्मिक सलाहकार क्योंगबू रिम्पोछे अपने हाथों से करें। उन्होंने माननीय लामा से इसके लिए प्रार्थना भी की थी। लेकिन रिम्पोछे ने मना कर दिया था। उनका विचार था कि उन्हें मन्दिर के बनकर तैयार होने के पूर्व ही परलोक की यात्रा करनी पड़ेगी। इसके उत्तर में, कहते हैं, ताशी लामा ने अपने गुरु से मन्दिर की समाप्ति तक जीवित रहने का बहुत अनुरोध किया था।

क्योंगबू रिम्पोछे बिलकुल वृद्ध हो चुके थे और तपस्वी साधुओं की भाँति नगर से कुछ कोस की दूरी पर येश्रू त्सांगपू (ब्रह्मपुत्र नद) के तीर पर रहा करते थे। ताशी लामा की वृद्धा

माता रिम्पोछे का बड़ा सम्मान करती थीं और जब मैं उनके यहाँ मेहमान था तो उक्त लामा के विषय में कई असाधारण कहानियाँ सुनने को मिली थीं।

हाँ, तो रिम्पोछे ने मूर्त्ति की प्राण-प्रतिष्ठा के शुभ कार्य के लिए रुक जाने का ही निश्चय किया और उन्होंने ताशी लामा को इसके लिए वचन भी दे दिया। सम्भव है, इस प्रकार का वादा पाठकों को अचम्भे में डाल दे। लेकिन इस देश के निवासियों की निश्चित धारणा है कि योग्य अनुभवी लामा अपनी इच्छानुसार स्वयं अपने मरने का समय निश्चित कर सकते हैं।

तब मेरे शिगात्से से चले आने पर लगभग एक वर्ष के बाद सब तैयारी हो चुकने पर ताशी लामा ने नियत तिथि पर एक बढ़िया पालकी और कुछ चोबदारों को बड़ी सज-धज के साथ क्योंगबू रिम्पोछे को लिवा लाने के लिए भेजा।

चोबदारों ने रिम्पोछे को पालकी के भीतर घुसते हुए अपनी आँखों से देखा। दरवाज़े बन्द कर दिये गये। पालकीवालों ने पालकी उठाई और चल दिये।

ताशिल्हुन्पो की विख्यात गुम्बा के सामने लाखों की संख्या में लोग इस शुभ-कार्य की पूर्त्ति को देखने के लिए एकत्र हुए थे। अकस्मात् उन लोगों ने विस्मय में आकर देखा कि क्योंगबू रिम्पोछे अकेले और पैदल चले आ रहे हैं। उन्होंने चुपचाप मन्दिर के प्रवेश-द्वार को पार किया और सीधे मैत्रेय भगवान् की विराट् मूर्ति के पास पहुँचे। उन्होंने अपने हाथों से उसका स्पर्श किया और इसके बाद वे उसी में विलीन हो गये।

कुछ समय के पश्चात् पालकी चोबदारों के साथ पहुँची। लोगों ने उसका दरवाज़ा खोला। जगह खाली थी।